पहला स्थान "सत्य"[१] का है। उसी सूक्त में आगे चलकर कहा है—"पृथिवी या राष्ट्र का सुख-कल्याण सब सत्य पर ही निर्भर करता है[२]।" ऋग्वेद में कहा है, "यह पृथिवी सत्य के आश्रय से ही ठहरी हुई है[३]।" इतना ही नहीं, ऋग्वेद (१०.१९०.१-३) के अघमर्षण मन्त्रों, में जहाँ प्रभु की महिमा से विश्व-ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति का वर्णन है, सब से पहले "ऋत" और "सत्य" की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। आचार-शास्त्र (Ethics) के क्षेत्र में "ऋत" कहते हैं वस्तु के यथार्थ ज्ञान को और "सत्य" कहते हैं अपने ज्ञान के यथार्थ प्रकाशन को और तदनुकूल आचरण को। अथर्व० १०.७.३७ में आलंकारिक रूप में वर्णन किया गया है कि "हे मनुष्य! देख यह वायु और ये जल की धारायें दिन-रात बिना विश्राम लिये सत्य की तलाश में विचर रहीं हैं, तेरा भी कर्तव्य है कि तू भी इन की तरह सत्य के अन्वेषण में सदा लगा रहे[४]" यही नहीं, स्वयं भगवान् के यश का गान भी वेद उन्हें "सत्यधर्मा[५]" कह कर करता है। इन उद्धरणों से यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि वेद की दृष्टि में सत्य का कितना ऊंचा स्थान है। सत्य का इतना महत्त्व होने के कारण ही वेद ने अन्यत्र स्पष्ट शब्दों में सत्य की रक्षा और असत्य का विनाश करने का आदेश किया है। ऋग्वेद ७. १०४. १२ मन्त्र में कहा है—"विवेकशील पुरुष के सामने सत्य और असत्य वचन दोनों आते रहते हैं, उन में से जो सत्य होता है उस की वह रक्षा करता है और असत्य का विनाश कर देता है[६]।" इसी भांति ऋग्वेद ७.६६.१३ में कहा है कि "हे मनुष्य! तुम सत्य को बढ़ाने वाले और, असत्य से घोर द्वेष करने वाले बनो[७]।" सत्य की महिमा के सम्बन्ध में वेद से और भी अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं। पर वेद की दृष्टि में सत्य का कितना महत्त्व है इसे दिखाने के लिए इतने ही प्रमाण बहुत हैं।

---

१. सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अथर्व० १२.१.१।

२. सत्येनावृतममृतं पृथिव्याः। अथर्व० १२.१.८।

३. सत्येनोत्तभिता भूमिः। ऋग्. १०.८५.१।

४. कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
किमापः सत्यं प्रेप्सन्तीर्नेलयन्ति कदाचन ॥ अथर्व० १०.७.३७।

५. कविमग्निमपस्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।
देवममीवचातनम् ॥ ऋग्. १. १२. ७।

६. सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते।
तयोर्यत् सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ऋग्. ७. १०४. १२।

७. ऋतावृधः··· घोरासो अनृतद्विषः। ऋग्० ७. ६६.१३।

ऋषि दयानन्द का सत्य पर आग्रह

आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने वेद में सत्य की इतनी अधिक महिमा देखकर ही आर्यसमाज के १० नियमों में से एक नियम ही यह बनाया है कि "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।" इसीलिये उन्होंने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश," जिस में उन्होंने वैदिक धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन और अनेक आर्य और आर्येतर धर्मों की आलोचना की है, की भूमिका में लिखा है—"जो सत्य है उस को सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उस को वैसा ही कहना लिखना और मानना सत्य कहाता है।"

सत्य का ज्ञान और प्रकाश मनुष्य का महत्त्वपूर्ण अधिकार है

इस प्रकार आर्यसमाज के धर्म में सत्य का ज्ञान और सत्य का प्रकाश और तदनुकूल आचरण एक बहुत ही आवश्यक अङ्ग है और मनुष्य का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अधिकार है। हमारी दृष्टि में मनुष्य के ऊपर इस से बढ़ कर और कोई अत्याचार नहीं हो सकता कि उस के हाथ से यह सत्य के ज्ञान और सत्य के प्रकाश का अधिकार छीन लिया जाये। इस अधिकार के छीन लेने का अर्थ मनुष्य को अन्धकार और गिरावट के महासमुद्र में धकेल देना है।

सत्य का परिज्ञान समालोचना से ही होता है

अब सत्य क्या है यह तो बिना समालोचना के जाना नहीं जा सकता। विज्ञान के सभी क्षेत्रों में सत्य को जानने का एक ही उपाय स्वीकार किया गया है, और वह है समालोचना या क्रिटिसिज़्म (Criticism)। आप को रसायन-शास्त्र (Chemistry), भौतिक-विज्ञान (Physics), भूगर्भ-विद्या (Geology), जीवन-शास्त्र (Biology), आयुर्वेद (Medical Science), मनोविज्ञान (Psychology) और दर्शन-शास्त्र (Philosophy) आदि विज्ञान के क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न दावों में से कौन-सा दावा सत्य है यह जानना होता है, आप झट कह उठते हैं, आलोचना (Criticism) करने दीजिये, आलोचना के पीछे जो सत्य प्रमाणित होगा उसे स्वीकार किया जायेगा। राजनीतिक क्षेत्र में आप व्याख्यान-वेदि और समाचार-पत्रों की बे-रोक-टोक स्वतन्त्रता का, सरकार के कार्यों की खुली समालोचना कर सकने का, अधिकार प्राप्त करने के लिये बड़ी-से-बड़ी कुर्बानियें करने को तैयार रहते हैं। इन सभी

क्षेत्रों में समालोचना के अधिकार को छीन लीजिये और फिर आप देखेंगे कि क्या विज्ञान और क्या राजनीति सब कहीं कैसी धांधली मच जाती है।

धर्म का सच्चा स्वरूप भी समालोचना से ही जाना जायेगा

जब अन्य सब क्षेत्रों में समालोचना या क्रिटिसिज़्म आवश्यक और कल्याणकारी समझी जाती है तो उसे धर्म के ही क्षेत्र में क्यों न उपयोग में लाने दिया जाये ? आप अपने धर्म का प्रचार करते हुए मेरे सामने आते हैं और मुझ से कहते हैं कि मैं आप के धर्म को स्वीकार कर लूं, तो मैं समालोचना कर के क्यों न देखूं कि आया आप का धर्म मेरे लिये स्वीकार करने योग्य भी है कि नहीं ? आप अपने धर्म के पैगम्बरों का नाम ले कर मुझ से कहते हैं कि इन में विश्वास लाओ और मान्यबुद्धि रखो, क्योंकि आप के धर्म को मान कर कोई व्यक्ति कितना ऊंचा हो सकता है इस के ये उदाहरण-रूप हैं, तो मैं क्यों न उन के जीवनों की समालोचना कर के देखूं कि आया उन में कोई इतनी ऊंची बातें हैं भी कि नहीं जिन से मैं उन्हें अपना मान्य समझ सकूं ? मैं तो किसी धर्म को अभ्युदय और निःश्रेयस सिद्धि की कसौटी पर कस कर ही धर्म स्वीकार करता हूं। तो फिर मैं आप के धर्म के प्रत्येक सिद्धान्त को ले कर इस कसौटी पर परख कर क्यों न देखूं ? मैं क्यों न देख सकूं कि आप के धर्म का कौन-सा सिद्धान्त जीवन के किस पहलू में लाभ पहुंचाता है और कौन-सा सिद्धान्त किस पहलू में हानि ? आश्चर्य की बात है कि धर्म के क्षेत्र में इसी समालोचना के अधिकार को स्वीकार करते हुए धर्मों वाले लोग कतराते हैं। कच्ची और छोटी आयु में बालक-बालिकाओं की शादी होनी चाहिये, स्त्रियों को परदे और बुर्के में रखना चाहिये और उन्हें किसी प्रकार की शिक्षा न मिलनी चाहिये, वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्मानुसार न हो कर जन्म से होनी चाहिये, ब्राह्मण के घर जन्म लेने वाला चाहे महामूर्ख और महा अनाचारी हो उसे ब्राह्मण का ही सत्कार और मान मिलना चाहिये और शूद्र के घर पैदा होने वाला चाहे कितना ही योग्य और आचार-सम्पन्न क्यों न हो जाये उसे कोई सत्कार और प्रतिष्ठा नहीं मिलनी चाहिये, इस प्रकार के सिद्धान्त मेरे सामने रखे जाते हैं और कहा जाता है कि ये धर्म-सिद्धान्त हैं, इन्हें मानो। मैं कहता हूं, अभ्युदय और निःश्रेयस की कसौटी पर परखने से ये धर्म सिद्ध नहीं होते। निःश्रेयस तो दूर रहा, ये तो अभ्युदय को ही न सिर्फ देते ही नहीं प्रत्युत उस में भारी रुकावट डालते हैं। इन के अनुसार आचरण होने से तो व्यक्ति और समाज का भारी नुकसान हो रहा है। मैं इन्हें धर्म नहीं मान सकता। ये अधर्म हैं। मैं इन्हें न सिर्फ स्वयं ही स्वीकार नहीं करूंगा, प्रत्युत दूसरे लोगों को भी

समझाऊंगा कि वे इन्हें स्वीकार न करें। क्योंकि सत्य का यथार्थ प्रकाश करना मेरा कर्त्तव्य है। मेरे इस कथन का यह अर्थ लिया जाता है कि मैं असहिष्णु हूं, तंगदिल हूं, दूसरे धर्मों का अपमान करता हूं। जिस बात की दूसरे क्षेत्रों में प्रशंसा की जाती है उसे धर्म के क्षेत्र में आ कर सहा नहीं जाता। क्या धर्म के क्षेत्र में समालोचना द्वारा सत्यासत्य में विवेक करने के मनुष्य के अधिकार को कुचल डालने से वहां भी धांधली मचनी शुरु न हो जायेगी? और क्या समालोचना की आज्ञा न होने से धार्मिक क्षेत्र में अनेक अंशों में धांधली मच नहीं रही है? आर्यसमाज धर्म के क्षेत्र में भी समालोचना के लिये फाटक खोलना चाहता है। इस के लिये आर्यसमाज को जितनी प्रशंसा मिलती उतनी थोड़ी होती। पर स्थिति की विचित्रता को देखिये, लोग उलटा आर्यसमाज को इस के लिये कोसते और भला-बुरा कहते हैं। वस्तु की यथार्थता को न समझने वाले लोग कुछ कहते रहें। आर्यसमाज धर्म के क्षेत्र में भी समालोचना के प्रवेश के लिये अन्त तक लड़ता रहेगा। क्योंकि वह इसे मनुष्य जाति के लिये परम कल्याण-कारी वस्तु समझता है और इस लिये इस के लिये लड़ना अपना धर्म समझता है।

वैदिकधर्मी तर्क को ऋषि मानते हैं

आर्यसमाज आचार्य यास्क और भगवान् मनु का अनुयायी है। आचार्य यास्क ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ निरुक्त में तर्क को ऋषि[1] कहा है। जिस प्रकार ऊंचीं कोटि के पहुंचे हुए आत्मज्ञानी ऋषियों को सत्य का प्रत्यक्ष हो जाया करता है उसी प्रकार तर्क भी सत्य को प्रत्यक्ष करा देने की शक्ति रखता है। इसी लिये आचार्य यास्क ने तर्क को ऋषि की पदवी प्रदान की है। भगवान् मनु ने अपने प्रसिद्ध धर्मशास्त्र मनुस्मृति में लिखा है कि "जो व्यक्ति तर्क के द्वारा खोज करता है वही धर्म को जान सकता है, दूसरा नहीं[2]।" आर्यसमाज अपने इन दोनों आचार्यों के चरण-चिन्हों पर चलता हुआ तर्क-ऋषि की सहायता से धर्म के सच्चे स्वरूप को जानने का प्रयत्न करता है। यदि हमारा मन राग और द्वेष से रहित हो तथा हमें सचाई को जानने की सच्ची इच्छा हो और हम तर्क करने के नियमों को जान कर उन का सही प्रयोग करें तो निश्चय ही तर्क में यह शक्ति है कि वह हमें सत्य का परिज्ञान करा दे। जब हम धर्म के सत्य स्वरूप को जानने के लिये तर्क का सही प्रयोग करेंगे तो तर्क हमें उस के सच्चे स्वरूप का भी परिज्ञान करा देगा। इसी लिये आर्यसमाज धर्म के क्षेत्र में समालोचना और तर्क के प्रयोग पर इतना बल देता है। तर्क

१. निरुक्तः १३. १२।
२. यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः। मनु. १२. १०६।

और समालोचना की सहायता के विना किसी धार्मिक मन्तव्य की सत्यता का परिज्ञान हो ही नहीं सकता।

सहिष्णुता और उदार-हृदयता किसे कहते हैं

सहिष्णुता और उदार-हृदयता इसे नहीं कहते कि मेरे चारों ओर चाहे जिस तरह के अनर्थकारी विचार धर्म के नाम पर फैलाये जाते रहें और मैं चुप-चाप बैठा रहूं, उन के रोकने का कोई प्रयत्न न करूं। यह सहिष्णुता और उदारता नहीं, यह कायरता और अधर्म की वृद्धि को आश्रय देना है। मेरा कर्तव्य है कि मैं असत्य और अनर्थकारी विचार की चाहे वह धर्म के नाम पर ही क्यों न फैलाया गया हो, असत्यता और अनर्थकारिता पूरे जोर से लोगों पर प्रगट कर दूं। आगे लोगों की मर्ज़ी है कि वे मेरी शुभ-भावना से प्रेरित सलाह को मानते हैं या नहीं मानते। मैं अपनी सलाह मनवाने के लिये किसी पर बल प्रयोग नहीं करता—किसी को लठ मारने नहीं जाता। सहिष्णुता और उदारता कहते हैं अपनी तीखी-से-तीखी समालोचना भी शान्ति से सुन सकने की शक्ति को, अपने विचारों के विरोधी-से-विरोधी विचार फैलाने वाले लोगों को भी उन के प्रचार-कार्य से रोकने के लिये किसी तरह के बल प्रयोग की ओर न झुकने की आदत को। मैं अपने विचारों की तीव्र-से-तीव्र समालोचना भी धैर्य से सुनूंगा, यदि शक्ति होगी तो उस का युक्ति और तर्क से उत्तर दूंगा, नहीं तो भूल मान लूंगा या चुप हो कर बैठ रहूंगा—इसे कहते हैं सहिष्णुता, इस का नाम है उदारता। इस दृष्टि से आर्यसमाज पक्का सहिष्णु है, पूरा उदार है। और जब दूसरे धर्मों वाले इसे असहिष्णु और संकुचित कहते हैं तो वे स्वयं अपने इन अवगुणों का परिचय दे रहे होते हैं।

वैदिक-धर्मियों की समालोचना का अन्य धर्मों पर प्रभाव

जब से आर्यसमाज ने धर्म के क्षेत्र में सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये समालोचना का प्रवेश किया है तब से अब तक के धर्मों के इतिहास को यदि देखें तो हमें पता चलता है कि आर्यसमाज के साथ संघर्ष में आने वाले धर्मों का आर्यसमाज द्वारा उन की समालोचना से भला ही हुआ है। आर्यसमाज के अपना कार्य आरम्भ करने से पहले भारतवर्ष में प्रचलित आर्य और आर्येतर धर्मों के जो मन्तव्य थे, कम-से-कम उन की जो व्याख्यायें थीं, उन में और आज के उन के मन्तव्यों या उन की व्याख्याओं में जमीन-आसमान का परिवर्तन हो गया है। उन मन्तव्यों की आज जो बुद्धि-संगत (Rational) व्याख्यायें की जाती हैं आज से ८०-९० साल[1] पहले वे नहीं मिलती थीं।

१. ऋषि दयानन्द ने गुरु विरजानन्द से शिक्षा प्राप्त कर के सम्वत् १९२० के आरम्भ में कार्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था।

यह सारा श्रेय आर्यसमाज द्वारा की गई इस समालोचना को ही है।

समालोचना समालोच्य और समालोचक दोनों का लाभ करती है

यही नहीं, समालोचना जहां समालोच्य को लाभ पहुंचाती है वहां समालोचक को भी उस से भारी लाभ पहुंचता है। जब मैं दूसरों के बुद्धि-विरुद्ध विचारों की आलोचना करता हूं तब मुझे अपनी भी पड़ताल करनी पड़ती है कि कहीं मैं स्वयं भी तो किसी बुद्धि-विरुद्ध विचार का प्रचार नहीं कर रहा। इस प्रकार समालोचना सब का ही भला करती है।

समालोचना बुरे अभिप्राय से नहीं होनी चाहिये

हां, एक बात सही है। वह यह कि यह समालोचना किसी बुरे अभिप्राय से नहीं होनी चाहिये। सत्यासत्य के निर्णय और लोगों की कल्याण की भावना से ही यह समालोचना होनी चाहिये। आर्यसमाज इस बात को स्वीकार करता है।

विभिन्न धर्मों की समालोचना में ऋषि दयानन्द का उद्देश्य

धर्मों के महान् समालोचक, आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में अपनी विभिन्न धर्मों की समालोचना के सम्बन्ध में लिखा है—

"जो मनुष्य पक्षपाती होता है वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मतवाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसीलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इस लिये विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग कर के सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह, और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़ कर असत्य में घुस जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी बात नहीं रखी है। और न किसी का मन दुखाना व किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिस में मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जान कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें। क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य-जाति की उन्नति का कारण नहीं है।" फिर उसी ग्रन्थ के ११ वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखा है—

"मेरा तात्पर्य किसी की हानि व विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने-कराने का है। इसी प्रकार सब मनुष्यों को न्याय दृष्टि से

वर्त्तना उचित है। मनुष्य-जन्म का होना सत्यासत्य का निर्णय करने-कराने के लिये है न कि वाद-विवाद, विरोध करने-कराने के लिये।" फिर १२ वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखते हैं—"इस लिये सत्य के जय और असत्य के क्षय के अर्थ मित्रता से वाद वा लेख करना हमारी मनुष्य-जाति का मुख्य काम है। यदि ऐसा न हो तो मनुष्यों की उन्नति कभी न हो।" पुनः १३ वें समुल्लास की अनुभूमिका में कहते हैं—"यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है न कि किसी को दुःख देने व हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ।" "जो कि पक्षपात-रूप यानारूढ़ हो के देखते हैं उन को न अपने न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं।" फिर अन्त में १४ वें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखते हैं—"न किसी अन्य मत पर न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई व भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है वही बुराई सब को विदित होवे, न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके। और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिस की इच्छा हो वह न माने वा माने, किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता। और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जान कर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें-करावें। क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुये और न होते हैं? सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षण-भगुंर जीवन में पराई हानि कर के लाभ से स्वयं रिक्त रहना और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इस में जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो उस को सज्जन लोग विदित कर देंगे तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जायेगा। क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिये किया गया है न कि इन को बढ़ाने के अर्थ। क्योंकि एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् रह कर परस्पर को लाभ पहुंचाना हमारा मुख्य कर्म है।" सत्यार्थप्रकाश की भूमिका ही में एक और स्थान पर लिखा है—"इस लिये जैसे मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उन में से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्यजाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूं, वैसा सब को करना उचित है।"

धर्म-तत्त्व की समालोचना मनुष्य का मौलिक अधिकार है

इन उद्धरणों को पढ़ देने के पश्चात्, यह दिखाने के लिये कि ऋषि दयानन्द और उन का अनुयायी आर्यसमाज अन्य धर्मों की समालोचना करते

हुए अपने सामने किस लक्ष्य को रखते हैं, कुछ और लिखने की आवश्यकता नहीं रह जाती। हम अन्य धर्मों की समालोचना किसी बुरे अभिप्राय से नहीं करते, किसी को चिढ़ाने और झूठे दोषारोप के ख्याल से नहीं करते। प्रत्युत सत्यासत्य का निर्णय कर के वास्तविक धर्म को प्रकाशित करने के विचार से करते हैं। ऐसा करने से ही धर्म अपने विशुद्ध रूप में रह सकता है और मनुष्य जाति के लिये कल्याणकारी हो सकता है। इस लिये अन्य धर्मावलम्बियों को आर्यसमाज द्वारा धर्म के क्षेत्र में समालोचना के प्रवेश को बुरा नहीं समझना चाहिये। धर्म-तत्त्व की यह समालोचना मनुष्य-मात्र का जन्मसिद्ध अधिकार है। और मनुष्य के इस मौलिक अधिकार को सब को स्वीकार करना चाहिये।

३

वैदिक-धर्मी आज के प्रचलित धर्मों को सर्वांश में सत्य नहीं मानते

अगली बात जो इस प्रसंग में हम कहना चाहते हैं वह यह है कि वैदिकधर्मावलम्बी आर्यसमाज अन्य धर्मावलम्बियों के धर्मों को जैसे वे वर्तमान में उपलब्ध होते हैं, सर्वांश में सत्य नहीं समझता। अनेक लोगों की, जो कभी इस विषय पर गम्भीर विचार नहीं करते, यह धारणा है कि सभी धर्म सत्य हैं। किसी धर्म को स्वीकार कर लीजिए आप का प्रयोजन पूरा हो जायेगा। "धर्म" कहे जाने वाले किन्हीं विश्वासों को मान लीजिये आप ईश्वर तक पहुंच जायेंगे—जो कि किसी धर्म को स्वीकार करने का एकमात्र मुख्य फल है।

एक हेत्वाभास

आर्यसमाज का ऐसा विचार नहीं है। ऐसा विचार रखने वाले लोग प्रायः एक हेत्वाभास उपस्थित किया करते हैं। वे कहते हैं कि आप को दिल्ली जाना है। आप लाहौर से अर्थात् पश्चिम की ओर से चल कर भी दिल्ली पहुंच सकते हैं और कलकत्ते से अर्थात् पूर्व की ओर से चल कर भी दिल्ली जा सकते हैं। यही हाल धर्मों का है। कोई रास्ता पकड़ लीजिये आप ईश्वर तक पहुंच जायेंगे। यह उदाहरण उपस्थित करने वाले लोग यह भूल जाते हैं कि इस में दिल्ली एक निश्चित और सीमित प्रदेश में ठहरा हुआ है, आप को वहां तक पहुंचने के लिये एक प्रदेश को छोड़ कर दूसरे प्रदेश में जाना पड़ता है। परन्तु ईश्वर के सम्बन्ध में यह बात नहीं है। वह सर्वव्यापक है। उस तक पहुंचने के लिये आप को एक प्रदेश छोड़ कर दूसरे प्रदेश में नहीं जाना पड़ता। उसे तो अपने आत्मा पर पड़े हुए अविद्यादि दोषों के आवरण को हटा कर अपने आत्मा में ही देख लेना होता है। आत्मा पर पड़े हुए राग,

द्वेष, काम, क्रोध, असत्य और अविद्यादि दोषों के आवरण को हटाने के दो भिन्न-भिन्न और विरोधी उपाय नहीं हो सकते। अपनी किसी पुस्तक में श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने एक दृष्टान्त दिया है। उस से हमारा अभिप्राय बिलकुल स्पष्ट हो जायेगा। आप दर्पण में मुंह देखना चाहते हैं। इस के लिये आवश्यक है कि (१) देखने वाले की आंखें ठीक हों, (२) दर्पण स्वच्छ हो, (३) प्रकाश हो, (४) दर्पण आंखों के आगे एक विशेष दूरी पर रखा हो, (५) आंख और दर्पण के बीच में कोई व्यवधान न हो और (६) दर्पण हिल-जुल न रहा हो। इन छः बातों का होना दर्पण में मुंह देखने के लिये आवश्यक है। किसी एक बात के भी न रहने पर मुंह नहीं देखा जा सकता। चाहे राजा हो चाहे रंक, चाहे भारतवासी हो चाहे योरोपीयन, सब के लिये दर्पण में मुंह देखने का यही नियम है। इस में किसी के लिये भी परिवर्तन या रियायत नहीं हो सकती।

प्रभु-दर्शन के साधन सर्वत्र एक समान होने चाहियें

परमात्मा का साक्षात्कार करने के भी यदि कोई उपाय हैं तो वे सर्वत्र और सब के लिये एक से ही होंगे। उन में किसी के लिये भेद या रियायत नहीं हो सकती। वे उपाय क्या हैं इस की बहस करना हमारा आज का विषय नहीं है। हमारे वैदिक धर्म में आत्मदर्शन और ईश्वर-साक्षात्कार के लिये जो उपाय बताये गये हैं उन का संक्षेप में नाम है—(१) यम (२) नियम (३) आसन (४) प्राणायाम (५) प्रत्याहार (६) धारणा (७) ध्यान और (८) समाधि। हमारा विश्वास है कि वैदिक धर्म का यह अष्टांग योग ही ईश्वर-साक्षात्कार का तर्कानुमोदित और बुद्धि-संगत उपाय है। उपाय कुछ भी हों पर वे होंगे सर्वत्र और सब के लिये एक ही। उन में भेद नहीं हो सकता। यह नहीं हो सकता कि एक धर्म में ईश्वर-साक्षात्कार के साधन, अहिंसा, तप और ब्रह्मचर्यादि माने गये हैं इस लिये ये भी सही साधन हैं, और, चूंकि दूसरे धर्म में हिंसा, विलासिता और व्यभिचारादि उस के साधन माने गये हैं—जैसा कि कई धर्मों[1] में देखा जाता है—तो ये भी सही हैं। या तो पहले ही साधन ठीक हैं या दूसरे ही। दोनों ठीक हरगिज़ नहीं हो सकते।

---

१. उदाहरण के लिये इस्लाम में गौ, बकरे और दुम्बे की बलि (कुर्बानी) रूप हिंसा को परमात्मा को प्रसन्न करने का साधन बताया गया है। हिन्दुओं के कई सम्प्रदायों में भी पशुओं की बलि को देवी को प्रसन्न करने का साधन माना जाता है। वाममार्गियों में विलासिता और व्यभिचार को भी सिद्धि का मार्ग समझा जाता है।

सही धर्म सब के लिये एक ही हो सकता है

हमने ऊपर देखा है कि आर्यसमाज की दृष्टि में धर्म वही है जो कि अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि कराये। अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि कराने वाले नियम सर्वत्र और सब के लिये एक ही हो सकते हैं। भिन्न-भिन्न और विरोधी नहीं। इस लिये वास्तव में धर्म सर्वत्र और सब के लिये एक ही हो सकता है, भिन्न-भिन्न और विरोधी नहीं। आर्यसमाज वेद के धर्म को ऐसा धर्म समझता है। क्योंकि उस के नियम अभ्युदय और निःश्रेयस की कसौटी पर पूरे उतरते हैं—प्रत्युत यह कसौटी प्राप्त ही वेद से होती है। सृष्टि के उदय-काल में मनुष्य के पास यही वेद का धर्म था। पीछे पैदा होने वाले सभी धर्मों ने सीधे तौर पर या परम्परया, वैदिकधर्म से कम-अधिक उधार लिया है, ऐसा हमारा विश्वास है जो कि इतिहास से पुष्ट किया जा सकता है[1]। इस प्रकार वैदिकधर्म का कुछ-न-कुछ अंश सभी धर्मों में चलता चला आया है। इन धर्मों में, किसी में कम और किसी में अधिक, ऐसे नियम पाये जाते हैं जो कि अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में सहायक हो सकते हैं। इतने अंश में आर्यसमाज इन विभिन्न धर्मों को सत्य और वैदिकधर्म ही समझता है। स्वयं ऋषि दयानन्द ने इस्लाम की समालोचना करते हुए सत्यार्थप्रकाश में लिखा है—"इस में जो कुछ सत्य है वह वेदादि विद्या-पुस्तकों के अनुकूल होने से जैसे मुझ को ग्राह्य है वैसे अन्य भी मजहब के हठ और पक्षपात रहित विद्वानों और बुद्धिमानों को ग्राह्य है।" परन्तु इन धर्मों में कितनी ही ऐसी बातें भी हैं जो कि अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में बाधक होती हैं। इतने अंश में आर्यसमाज इन धर्मों को असत्य समझता है और उन का खण्डन भी करता है।

धर्मों के सत्यांश के साथ उन का असत्यांश भी परखना होगा

कोई पूछ सकता है कि सब धर्मों में जो सत्य आप को प्रतीत होता है उसी पर आप बल क्यों नहीं देते, जो असत्य दीखता है उस पर ध्यान क्यों देते हैं और इस प्रकार विभिन्न धर्मावलम्बियों में लड़ाई-झगड़े के बीज क्यों बोते हैं ? इस प्रश्न में एक भूल है। किसी धर्म में क्या सत्य है जब यह जानने आप बैठेंगे तब उस में क्या सत्य नहीं है यह जानना आवश्यक हो जायेगा—सत्य पर अंगुलि रखने के लिये आप को उसे असत्य से अलग करना ही पड़ेगा,

१. श्री गङ्गाप्रसाद एम. ए. (भूतपूर्व जज) का Fountain Head of Religion (धर्म का आदि स्रोत) नामक ग्रन्थ इस विषय का बड़ा उपयोगी और विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ है।

और थोड़ी देर के लिये असत्य को भी ध्यान में लाना ही पड़ेगा। नहीं तो सत्य तक आप नहीं पहुंच सकेंगे। दूसरी बात यह है कि यदि आप असत्य की ओर निर्देश न करें और खाली सत्यांश की ही प्रशंसा करते रहें तो इस का एक यह परिणाम होगा कि उस धर्म वाले अपने धर्म की प्रशंसा ही प्रशंसा सुनते रहने के कारण अपने धर्म के सभी अंगों को सत्य और सही समझने लग जायेंगे। उन्हें यह भान ही न होगा कि हमारे यहां कुछ असत्य बातें भी हैं। और इस प्रकार उन के आचरण में कई ऐसी बातें भी आ जायेंगी जो मनुष्य-जाति के कल्याण के लिये हानिकारक होंगी। उन के और मनुष्य-जाति के भले के लिये आवश्यक है कि उन के धर्म में पाई जाने वाली असत्य बातों की ओर उन का ध्यान खींचा जाये।

समालोचना सार्वभौम धर्म की ओर ले जाती है

इस का परिणाम लड़ाई-झगड़े नहीं होगा। प्रत्युत सब धर्मों में से अभ्युदय और निःश्रेयस-सिद्धि में साधनभूत सिद्धान्तों को जब अलग कर लिया जायेगा और इन में बाधक बातों को असत्य समझ कर छोड़ दिया जायेगा तो सब के मानने के लिये एक ही धर्म रह जायेगा[1] जो कि सार्वभौम होगा। तब कोई धर्म के नाम पर आपस में न लड़ेगा। उस समय सारी मनुष्य-जाति एक हो जायेगी। मनुष्य-जाति की इसी एकता को दृष्टि में रख कर ऋषि दयानन्द ने धर्मों में समालोचना की प्रथा चलाई थी। उन का यही अभिप्राय था यह सत्यार्थप्रकाश में स्थान-स्थान पर देखा जा सकता है। हम स्थान की कमी से यहां उद्धरण नहीं देते। आज-कल लोग अपने धर्मों की आलोचना से इस लिये नाराज होते हैं कि उन्हें समालोचना की असली कीमत का ज्ञान नहीं। जब उन्हें यह ज्ञान हो जायेगा तब वे इस से नाराज न हुआ करेंगे। इस लिये आवश्यकता इस बात की है कि आर्यसमाज के साथ मिल कर लोगों में सद्भावना पूर्वक की गई समालोचना के महत्त्व को समझाया जाये न कि इस के लिये उलटा आर्यसमाज को बुरा-भला कहा जाये।

४

वैदिकधर्म धर्मप्रचार में बल-प्रयोग का समर्थक नहीं है

इस सम्बन्ध में तीसरी बात जो स्मरण रखने योग्य है वह यह है कि आर्यसमाज यद्यपि अन्य धर्मावलम्बियों के धर्मों में सब सत्य ही सत्य नहीं

---

१. इस सम्बन्ध में सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास का वह प्रकरण देखने योग्य है जहां ऋषि दयानन्द ने सब धर्मों में पाई जाने वाली समानता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये हैं।

देखता, और उन की समालोचना भी करता है, तथापि उस की यह मनोवृत्ति नहीं है कि वह अपने सिवाय किसी अन्य को जीने ही नहीं देना चाहता। और न ही वह अपने विचारों के प्रचार के लिये अन्य धर्मावलम्बियों पर किसी प्रकार का अनुचित दबाव ही डालने का पक्षपाती है। आर्यसमाज का सर्वमान्य धर्मग्रन्थ वेद, जो कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये दिया गया था, आदेश करता है—

सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अथर्व० ३.३०.१ ।
येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ अथर्व० ३. ३०. ४ ।

अर्थात्, "तुम्हारा हृदय एक हो, मन एक हो, तुम आपस में लड़ो मत, एक-दूसरे को प्यार से चाहो, जैसे गौ अपने नये पैदा हुए बछड़े को प्यार से चाहती है।" "जिस ढंग से जीवन-यात्रा चलाते हुए देवलोग परस्पर विरुद्ध आचरण नही करते और आपस में लड़ते नहीं वही वेद के ज्ञान का ढंग मैं तुम्हारे घर में भी देता हूं।" एक अन्य स्थान पर वेद का भक्त अपने भगवान् से प्रार्थना करता है—

दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्,
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे ।

यजुः. ३६. १८ ।

अर्थात्, "हे भगवान् ! मुझे समर्थ बनाइये, सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, और मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं, हम सब परस्पर मित्र की दृष्टि से देखें।" वेद की इस आज्ञा के अनुसार प्रत्येक आर्यसमाजी और आर्यसमाज संसार के सब प्राणियों और विशेषकर मनुष्यों को अपना मित्र समझता है। अगर वह किसी मनुष्य के किन्हीं धार्मिक या दूसरे विचारों की आलोचना भी करता है तो भी वह अपने को उन का मित्र समझते हुए मित्र की दृष्टि से, उस के कल्याण की भावना अपने हृदय में रख कर, करता है। मित्र को अधिकार होता है कि वह अपने मित्र की अवसर पड़ने पर कड़ी-से-कड़ी आलोचना कर सके। जो मित्र इस अधिकार को नहीं बरतता है वह वास्तव में मित्र ही नहीं है। आर्यसमाज मित्र की दृष्टि से जो उचित समझता है उसे अन्य धर्मावलम्बियों को सुना देता है। उस की सलाह को मानना न मानना उन के अपने अधिकार में है। इस के लिये उन पर किसी तरह के बल-प्रयोग या अन्य प्रकार के अनुचित दबाव के लिये आर्यसमाज का धर्म नहीं कहता।

आर्य समाज का धर्म बल-प्रयोग केवल दस्युओं के सम्बन्ध में ही करने की आज्ञा देता है। खाली विचार-भेद की अवस्था में बल-प्रयोग की आज्ञा आर्य-समाज नहीं देता। ऋषि दयानन्द ने स्वयं लिखा है—"सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिस की इच्छा हो वह न माने वा माने किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता।" आर्यसमाज का धर्म अन्य धर्मावलम्बियों के साथ, विचार-भेद होते हुए भी, किस प्रकार का जीवन बिताने को कहता है यह वेद के **"जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्, सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहां ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती,**[1]" (अथर्व० १२.१.४५) इस मन्त्र से अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है। इस में कहा गया है कि "पृथिवी के ऊपर रहने वाले बहु-भाषी और विभिन्न-धर्मावलम्बी लोगों को आपस में इस प्रकार प्रेम से रहना चाहिये जैसे एक घर में रहने वाले लोग रहते हैं।" एक कुटुम्ब के लोग अनेक वार आपस में लड़-झगड़ भी पड़ते हैं, उनमें मन-मुटाव और विचार-भेद भी हो जाता है। पर इस से वे एक-दूसरे के रक्त के प्यासे नहीं हो जाते। इस सब का परिणाम यह होता है कि अगले दिन उन के प्रेम का प्रकाश और भी अधिक होता है—उन का मिलन और भी गाढ़ा होता है। आर्यसमाज का धर्म इसी रीति का अवलम्बन धर्म-प्रचार के क्षेत्र में भी करने को कहता है।

इसी मनोवृत्ति का परिणाम है कि आर्यसमाज ने अपने इतिहास में धर्मप्रचार के क्षेत्र में कभी किसी अन्य धर्मावलम्बी पर बल का प्रयोग नहीं किया। प्रत्युत अन्य धर्मावलम्बियों, विशेषकर मुसलमानों, द्वारा आर्यसमाजियों पर तो बल-प्रयोग किया गया है जिसका परिणाम-स्वरूप आर्यसमाज को अपने प्रचार-कार्य में पं० लेखराम और स्वामी श्रद्धानन्द जी आदि अनेक शहीदों की आहुतियें देनी पड़ी हैं। धर्मप्रचार में आर्यसमाज ने बलिदान दिये हैं, लिये नहीं।

५

वैदिक धर्म चरित्र की शुद्धता पर बल देता है कोरे विश्वास पर नहीं

चौथी बात देखने की यह है कि आर्यसमाज का धर्म यह नहीं सिखाता कि अन्य धर्मों का अवलम्बन करने वालों में पवित्र और श्रेष्ठ व्यक्ति नहीं हो सकते। और न ही उस का यह दावा है कि अपने को आर्य कहने वाले सारे ही आदमी बिना अपवाद के पवित्र और श्रेष्ठ होगें। वेद का धर्म आचार पर बहुत बल देता है। वेद और तदनुकूल शास्त्रों में स्थान-स्थान पर ज्ञान, सत्य, दया, न्याय, श्रद्धा, तप, दीक्षा, दान, ब्रह्मचर्य, इन्द्रियजय, और मनोवशित्व आदि

---

१. इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारे ग्रन्थ "वेद का राष्ट्रिय गीत" के पृष्ठ १०६–१०९ पर देखिये।

आचार के अंगों की अत्यधिक प्रशंसा की गई है और आदेश किया गया है कि साधक को चाहिये कि वह इन उत्तम गुणों को अपने अमली जीवन में धारण करे। अथर्ववेद १२.५.१.१—६ में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्राह्मण की वाणी में शक्ति और सामर्थ्य श्रम, तप, ब्रह्म, ऋत, सत्य, श्रद्धा, दीक्षा और यज्ञ (देवपूजा, संगतीकरण, दान) इत्यादि गुणों के आधार पर ही आ सकते हैं। अगर आचार के ये अंग उस में न हों तो ब्राह्मण किसी काम का नहीं रहता। आचार के ये और दूसरे अंग किसी व्यक्ति के जीवन में न पाये जाते हों पर वेद उस ने सारा याद कर रखा हो, ऐसे आदमी का भी कुछ बन जायेगा वेद ऐसा नहीं बताता। धर्म का खाली मौखिक ज्ञान कुछ रक्षा कर लेगा ऐसी वेद की स्थिति नहीं है। वेद ने स्वयं अति स्पष्ट शब्दों में कहा है—

इमे ये नार्वाङ् न परश्चरन्ति न ब्राह्मणासो न सुतेकरासः।
त एते वाचमभिपद्य पापया सिरीस्तन्त्रं तन्वते अप्रजज्ञयः[1] ॥

ऋग्. १०. ७१. ६।

अर्थात्—"जो वेद प्रतिपादित विधि से न इस लोक को सिद्ध करते हैं और न परलोक को—न कर्मशील बनते हैं और न ब्रह्म-ज्ञानी—वे अज्ञानी इस वेद की वाणी को प्राप्त कर के भी पाप-व्यवहार में ही फंसे रहते हैं उन की उन्नति नहीं हो पाती।" इसी प्रकार ऋग्. १०.७१.४ में उन लोगों को, जो कि वेद का खाली शाब्दिक ज्ञान प्राप्त कर के अपने को कृतकृत्य समझने लगते हैं, लक्ष्य कर के कहा है, "**उत त्वः पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्वः श्रृण्वन्न श्रृणोत्येनाम्, उतो त्वस्मै तन्वं विसस्रे जायेव पत्य उशती सुवासाः**[2]।" अर्थात् "ऐसे लोग वेद को पढ़-सुन कर भी वेदज्ञ नहीं हैं, क्योंकि वेद-ज्ञान का वास्तविक लाभ आचार-शुद्धि और तज्जन्य फल-प्राप्ति नहीं ले सकते। जिन का आचार वेदानुकूल है उन्हीं को वास्तव में वेद का साक्षात्कार हुआ है।" वेद में एक जगह कहा है कि "**पक्तारं पक्वः पुनराविशाति**" (अथर्व० १२. ३. ४८) अर्थात् "मनुष्य जैसा पकाता है, जैसा करता है, वह पकाने वाले को, करने वाले को, वैसा ही प्राप्त होता है।" भाव यह है कि हम जैसा करते हैं वैसा भरते हैं। अथर्ववेद में ही अन्यत्र कहा है—"**सिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तम्**[3]" (अथर्व० ४. १६. ६)

---

१. इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारे ग्रन्थ "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" में पृष्ठ २-३ पर देखिये।

२. इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारे ग्रन्थ "वेदोद्यान के चुने हुये फूल" में पृष्ठ ७ पर देखिये।

३. इस मन्त्र की और जिस सूक्त का यह मन्त्र है उस पूरे सूक्त की विस्तृत व्याख्या हमारे ग्रन्थ "वरुण की नौका" द्वितीय भाग के पृष्ठ १०४-१३७ पर देखिये।

अर्थात् "असत्यवादी को, असत्यव्यवहारी को, परमात्मा के पाश बांध लेते हैं।" वेद के इन और ऐसे ही अन्य स्थलों का स्पष्ट तात्पर्य यह है कि वैदिक धर्म में व्यक्ति के आचरण की शुद्धता देखी जाती है, खाली उस के विचार और विश्वास नहीं देखे जाते।

चरित्र-हीन वैदिक धर्मी से चरित्रवान् विधर्मी श्रेष्ठ है

वेद का ऐसा सिद्धान्त होने की स्थिति में, यदि वेद के धर्म से भिन्न धर्म का अवलम्बन करने वाला एक व्यक्ति सत्यादि आचार के अङ्गों का पालन करने वाला है, और दूसरा इन आचार के अङ्गों का पालन तो नहीं करता पर वेद उसे सारे याद हैं और वेद के धर्म को वह कल्याणकारी भी मानता है, तो वैदिक धर्म को मानने वाला आर्यसमाज उस पहले व्यक्ति को ही अधिक पवित्र और श्रेष्ठ मानेगा। यह ठीक है कि आर्यसमाज वेद के धर्म का प्रचार करता है क्योंकि उस की दृष्टि में वेद के सारे सिद्धान्त अभ्युदय और निःश्रेयस को सिद्धि कराने वाले हैं। परन्तु यदि एक वेद को मानने वाला उन सिद्धान्तों के अनुसार न चले और किसी अन्य धर्म का अवलम्बी उन सिद्धान्तों पर आचरण कर रहा हो तो निःसन्देह वह अन्य धर्मावलम्बी वेद पर मौखिक विश्वास रखने वाले से अधिक अच्छा है, क्योंकि वह वास्तव में वैदिक-धर्मी है, यद्यपि वह अपने मुख से इस बात को स्वीकार नहीं करता।

आर्यसमाज की अन्य धर्मावलम्बियों के सम्बन्ध में वह स्थिति नहीं है जो कि मौलाना मुहम्मदअली की थी। मौलाना मुहम्मदअली ने एक वार कहा था कि आचार के सत्यादि अङ्गों का पूर्ण धनी महात्मा गांधी नरक में जायेगा क्योंकि वह मुहम्मद साहब और कुरान पर विश्वास नहीं लाता, और आचार की दृष्टि से एक तुच्छ-से-तुच्छ मुसलमान वेश्या बहिश्त में जायेगी क्योंकि वह मुहम्मद साहब और कुरान पर विश्वास रखती है। इस्लाम में विश्वास रखने की दृष्टि से, मुहम्मद साहब और कुरान पर विश्वास रखने की दृष्टि से, सभी मुसलमानों का इसी प्रकार का विचार है। उन के यहां विश्वास का महत्त्व है, आचरण की शुद्धता का नहीं। यही अवस्था ईसाइयों की है। उन के मत में भी ईसामसीह पर विश्वास लाने से ही मनुष्य का कल्याण हो सकता है।

आर्यसमाज का दृष्टि-बिन्दु इस से सर्वथा भिन्न है। आर्यसमाज की दृष्टि में आचारयुक्त महात्मा गांधी आचारहीन मौखिक वैदिक-धर्मी आर्य-समाजी से सदा ही श्रेष्ठ है। ऐसे महात्मा गांधी का ही इस लोक और परलोक दोनों में कल्याण होगा और वैसे आर्यसमाजी का हरगिज़ नहीं। आचारहीन

आर्यसमाजी की तुलना में आचार-युक्त मुसलमान और इसाई भी परमात्मा की दृष्टि में अच्छे हैं और उन्हीं का कल्याण होगा।

६

वैदिक-धर्म विधर्मियों के साथ भी भलाई करने का उपदेश देता है

पांचवी और अन्तिम बात जो कि इस प्रसङ्ग में स्मरण रखने योग्य है वह यह है कि वैदिकधर्म अपने अनुयायियों को किसी विशेष समुदाय के लोगों के साथ ही उदारता और उपकार आदि करने की आज्ञा नहीं देता। प्रत्युत मनुष्यमात्र—नहीं, प्राणीमात्र—को अपना समझ कर उस के साथ उपकार करने की आज्ञा देता है। वेद में परमात्मा को सब का पिता और माता कहा गया है। **"त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ, अधा ते सुम्नमीमहे"** (ऋग्. ८. ९८. ११)—इत्यादि वेद के प्रसंगों में यह बात स्पष्ट देखी जा सकती है। जब प्रभु हम सब का पिता और माता है तो हम सब स्वभावतः ही आपस में भाई और बहिनें हो जाते हैं। और जैसे हम अपने माता-पिता से उत्पन्न होने वाले भाई-बहिनों के कष्ट-क्लेशों को अपना ही समझ कर उन के निराकरण के लिये भर-सक प्रयत्न करते हैं वैसे ही हमें पिताओं के पिता और माताओं की माता परमात्मा के पुत्रों को अपना भाई-बहिन समझते हुए उन के कष्ट-क्लेशों को अपना ही समझ कर उस के निराकरण के लिये भी भर-सक प्रयत्न करना चाहिये। हम अपने लिये जिस चीज़ को कल्याणकारी समझते हैं उसे हमें अपने इन भाई-बहिनों को देने के लिये भी हर समय तैयार रहना चाहिये। एक वैदिकधर्मी के लिये उस के प्यारे वैदिक-धर्म से, जो कि अभ्युदय और निःश्रेयस दोनों की सिद्धि का उपाय बताता है, बढ़ कर और कौन-सी चीज़ अधिक कल्याणकारी हो सकती है? वेद इस पवित्र वैदिक धर्म के सन्देश को सब मनुष्यों तक ले जाने की आज्ञा स्वयं असंदिग्ध शब्दों में देता है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय॥ यजु:. २६. २।

अर्थात् "इस कल्याणकारिणी वेद की वाणी का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र, अपने और पराये सब लोगों में प्रचार करो।" एक वैदिकधर्मी जब अन्य धर्मावलम्बियों के कल्याण के लिये उन के पास जा कर वेद जैसी उत्तम वस्तु उपहार में दे सकता है तो फिर और कोई ऐसी बात नहीं रह जाती जिसे वह पीड़ितों और क्लेशग्रस्तों की पीड़ा और क्लेश को मिटाने के लिये न कर सके—चाहे वे पीड़ित किसी भी धर्म को क्यों न मानते हों।

जैनियों के ग्रन्थ विवेकसार में लिखा है कि अन्य मत वालों से कम बोलना चाहिये, उन्हें पूजा के लिये गन्ध-पुष्पादि दान नहीं देने चाहियें और उन्हें अन्न-वस्त्रादि भी दान नहीं देने चाहियें। इस पर समालोचना करते हुए सत्यार्थप्रकाश के १२ वें समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि "तब तो जैनियों की दया अन्य मत वालों पर न रही, अपने मत वालों पर ही जो कि अपने घर वालों के समान हैं, रही। केवल अपनों-अपनों पर दया करना और दूसरे मत वालों से द्वेष करना ठीक नहीं है।" इसी प्रसङ्ग में ऋषि दयानन्द प्रश्न करते हैं—"क्या मनुष्यादि पर चाहे किसी मत में क्यों न हो दया कर के उस का अन्न-पानादि से सत्कार करना और दूसरे मत के विद्वानों का मान और सेवा करना दया नहीं है ?" ऋषि की इस समालोचना और प्रश्न का यह स्पष्ट तात्पर्य है कि वे अन्य मतस्थ विद्वानों के सेवा-सत्कार को तथा कष्ट में पड़े हुए अन्य मतस्थ लोगों की अन्न-वस्त्रादि द्वारा सहायता करने को धर्म का आवश्यक अङ्ग समझते हैं। इसी लिये ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के दस नियमों में जिन्हें मानना प्रत्येक आर्यसमाजी के लिये आवश्यक है एक नियम ही यह रखा है कि "संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

इस उपकार की भावना को सजीव और मूर्त्त रूप देने के लिये वैदिक धर्म में बलिवैश्वदेव-यज्ञ या भूतयज्ञ की सृष्टि हुई है, जो कि प्रतिदिन अवश्य-करणीय पांच यज्ञों में से एक है। इस यज्ञ को करते हुए एक वैदिकधर्मी प्रतिदिन मनुष्यमात्र—नहीं, प्राणिमात्र—का उपकार करने की प्रतिज्ञा करता है और उस का क्रियात्मक परिचय देता है। वह इस यज्ञ को करते हुए समाज के लिये तरह-तरह से उपयोगी मनुष्यों का उपकार करने की तो प्रतिज्ञा करता ही है, इस के साथ ही वह कोढ़ी आदि ऐसे रोगियों की, जो कि आजीविका उपार्जन करने के लिये सर्वथा अयोग्य हो गये हैं, तथा कृमि, कीट, पतंगादि की भी सहायता और उपकार करने की प्रतिज्ञा करता है।

अपने धर्म और आचार्य की आज्ञा मानते हुए आर्यसमाज जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में लोगों के उपकार के कार्य करता रहता है, चाहेवे लोग किसी भी धर्म के अवलम्बी क्यों न हों। आर्यसमाज द्वारा संचालित औषधालय और शिक्षणालय तथा समय-समय पर हो जाने वाले दुर्भिक्ष और जलप्लावनों के अवसरों पर उस द्वारा धनादि से किया जाने वाला लोगों का उपकार इस बात के साक्षी हैं।

हम समझते हैं इन पंक्तियों से वैदिक धर्म को मानने वाले आर्यसमाज

का अन्य धर्मावलम्बियों के सम्बन्ध में जो दृष्टि-बिन्दु है वह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है। वह सभी अन्य धर्मावलम्बियों को परमात्मा के पुत्र होने के कारण अपना भाई समझता है। उन का सब तरह का उपकार करने को तैयार रहता है। और यदि कभी उन की समालोचना भी करता है तो वह भी उन के और संसार के भले की भावना से प्रेरित हो कर।

वेद और इलहाम

१

आर्य लोग वेद को ईश्वरीय-ज्ञान मानते हैं

भारतीय आर्य (हिन्दु) लोग वेद को अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं। अति प्राचीन काल से आर्य लोगों की परम्परा वेद को अपना धर्मग्रन्थ मानती चली आ रही है। हम आर्य लोगों की सम्मति में वेद साधारण धर्मग्रन्थ नहीं है। हमारे मत में वेद ईश्वरीय ज्ञान है। परमेश्वर सर्वज्ञ और निर्भ्रान्त हैं। परमेश्वर का दिया हुआ ज्ञान होने के कारण वेद भी निर्भ्रान्त और सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाला ग्रन्थ है ऐसा हम आर्य लोग सदा से मानते आये हैं। सृष्टि के शुरु में परमात्मा ने मनुष्य को पैदा कर के जब उसे आंखें दी थीं तो उस की आंखों को सहायता देने के लिये परमात्मा ने चन्द्रमा और सूर्य आदि की रचना कर के उन का प्रकाश भी साथ ही दे दिया था। मनुष्य आंखें खोल कर चले और चन्द्रमा और सूर्य आदि के प्रकाश से सहायता ले, यदि मनुष्य ऐसा करेगा तो वह अपने गन्तव्य स्थानों पर बड़ी सुगमता से पहुंचता रह सकेगा। उसे यह पता लगता रहेगा कि साफ़-सुथरा, सीधा और सरल रास्ता कौन-सा है और कांटे-कंटीले, झाड़ी-झंखाड़, ईंट-पत्थर तथा गढ़े-टीलों से युक्त ऊबड़-खाबड़, टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग कौन-सा है। खुली हुई आंखें चन्द्रमा और सूर्य के प्रकाश की सहायता से यह सब कुछ भली-भांति देख सकेंगी। चन्द्रमा और सूर्य के इस प्रकाश की सहायता से मनुष्य ऊबड़-खाबड़, टेढ़े-मेढ़े और लम्बे गलत रास्ते से बच सकेगा। तथा साफ-सुथरे, सीधे और सरल सही रास्ते को अपना सकेगा और इस प्रकार अपने गन्तव्य स्थान पर, अपने ठिकाने पर, आसानी से पहुंच सकेगा। जिस प्रकार परमेश्वर ने हमारे इन चर्म-चक्षुओं की सहायता के लिये भौतिक चन्द्रमा और सूर्य का प्रकाश प्रदान किया था उसी प्रकार हमारे मन की, हमारी बुद्धि की, आंखों को सहायता देने के लिये परमेश्वर ने सृष्टि के आरम्भ में वेदरूपी सूर्य के ज्ञान का प्रकाश भी दे दिया था। मनुष्य अपनी बुद्धि और मन की आंखों को खुला रखे, अपनी विचार-शक्ति से काम ले, और वेद का भली-भांति अध्ययन करे तो वेद के स्वाध्याय से प्राप्त होने वाला ज्ञान का प्रकाश मनुष्य को सब प्रकार के कर्तव्य और अकर्तव्य का बोध करा देगा। धर्म क्या है और अधर्म क्या है, पुण्य क्या है और पाप क्या है, कर्तव्य क्या है और अकर्तव्य क्या है, वेद के स्वाध्याय से मनुष्य को यह सब पता चलता रहेगा। हमें क्या करना चाहिये और क्या नहीं, हमारा जीवन किस प्रकार

बीतना चाहिये और किस प्रकार नहीं, वेद के अध्ययन से हमें यह सब मालूम होता रहेगा। हम अधर्म से बच कर धर्म के मार्ग पर किस तरह चलते रह सकते हैं, पाप से बच कर पुण्य के मार्ग का अवलम्बन किस प्रकार करते रह सकते हैं, विचारपूर्वक किया हुआ वेद का स्वाध्याय हमें यह सब कुछ बताता रहेगा। वेद के ज्ञान के प्रकाश की सहायता से हमारे मन की आंखों को सदा पता लगता रहेगा कि जीवन बिताने का गलत रास्ता कौन सा है और सही रास्ता कौन सा है। हम गलत रास्ता छोड़ते रहेंगे और सही रास्ता अपनाते रहेंगे। इसी प्रयोजन के लिये भगवान् ने सृष्टि के आरंभ में वेद के सूर्य का प्रकाश मनुष्य को प्रदान किया था। हम आर्यों की परम्परा सदा से ऐसा मानती आई है।

वेद में सब प्रकार का मनुष्योपयोगी ज्ञान भरा है

हम आर्य लोगों की धारणा है कि वेद के अन्दर परमात्मा ने मनुष्य के लिये उपयोगी सब प्रकार का ज्ञान दे दिया है। वेद में मनुष्य के वैयक्तिक कर्तव्यों का भी उपदेश है, कौटुम्बिक और सामाजिक कर्तव्यों का भी उपदेश है। वेद में राजनीतिशास्त्र का भी उपदेश है। अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, परिवार से बाहर के समाज के और राष्ट्र के लोगों के प्रति, पशु-पक्षी और अन्य प्राणियों के प्रति, और परमात्मा के प्रति मनुष्य के क्या कर्त्तव्य हैं इन सब बातों का उपदेश वेद में दिया गया है। मनुष्य के शरीर की रचना के सम्बन्ध में और रोगों के निवारण के सम्बन्ध में भी वेद में यथेष्ट उपदेश हैं। जल, वायु, पृथिवी, अग्नि, आकाश, बिजली, सूर्य और चन्द्रमा आदि विविध प्रकार के प्राकृतिक पदार्थों के सम्बन्ध में भी वेद में पर्याप्त ज्ञान दिया गया है। आत्मा और परमात्मा के विषय में भी वेद में भरपूर ज्ञान दिया गया है। मनुष्य सब प्रकार का सांसारिक अभ्युदय किस प्रकार प्राप्त कर सकता है और ब्रह्म का साक्षात्कार कर के मोक्षावस्था में ब्रह्मानन्द रस के पान का अधिकारी कैसे बन सकता है, यह सब भी वेद में भली-भांति बताया गया है। इस लोक और परलोक-सम्बन्धी सब प्रकार का ज्ञान वेद में दिया गया है। एक शब्द में सब प्रकार की भौतिक और आध्यात्मिक विद्याओं का उपदेश वेद में दे दिया गया है। इस प्रकार असाधारण ज्ञान से भरा हुआ धर्मग्रन्थ वेद है।

वेद का ज्ञान परमेश्वर ने सृष्टि के आदि में दिया था

और मनुष्य के लिये उपयोगी यह सब प्रकार का ज्ञान, वेद के रूप में, सृष्टि के आरंभ में ही परमात्मा ने प्रदान कर दिया था। हम आर्यों की ऐसी धारणा है। ब्रह्मा से ले कर ऋषि दयानन्द तक की आर्य ऋषि-मुनियों,

आचार्यों, विद्वानों और साधु-महात्माओं की अनन्त परम्परा ऐसा ही मानती आई है। हमारे ब्रह्मा, मनु, वसिष्ठ, राम, कृष्ण, व्यास, कणाद, गोतम, पतंजलि जैमिनि, बुद्ध, कुमारिल, शंकराचार्य, वाचस्पतिमिश्र, सायण, मध्व और दयानन्द आदि ऋषि-मुनि और आचार्य लोग वेदों के सम्बन्ध में यही धारणा रखते आये हैं। हमारे ब्राह्मण ग्रन्थ, हमारी उपनिषदें, हमारे दर्शनशास्त्र, हमारे रामायण और महाभारत, हमारी गीता, हमारे पुराण, हमारा आयुर्वेद और अन्य शास्त्र, सभी वेद की महिमा के सम्बन्ध में इसी प्रकार के उद्गार प्रकट करते हैं। सारा संस्कृत-साहित्य ही वेद की महिमा के गीतों से भरा पड़ा है। अपने ऋषि-मुनियों और आचार्यों तथा अपने समग्र साहित्य का अनुसरण करती हुई सर्व-साधारण आर्य (हिन्दु) जनता भी अनादि-काल से वेदों के सम्बन्ध में यही धारणा रखती आई है।

इस प्रकार वैदिकधर्मी आर्य लोग वेद को मनुष्य की रचना नहीं मानते, वे उसे ईश्वर का दिया हुआ ज्ञान मानते हैं—इलहाम मानते हैं।

२

क्या ईश्वरीय-ज्ञान का सिद्धान्त मिथ्या है ?

कुछ लोगों का विचार है कि इलहाम अथवा ईश्वरीय-ज्ञान का सिद्धान्त सर्वथा मिथ्या है। ये लोग न तो वेद को ही ईश्वरीय-ज्ञान स्वीकार करते हैं और न ही किसी अन्य ग्रन्थ को। इन लोगों का मत है कि न तो ईश्वरीय-ज्ञान के सिद्धान्त को युक्ति और तर्क से सिद्ध ही किया जा सकता है और न ईश्वरीय-ज्ञान की कोई आवश्यकता ही है।

ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त तर्क-संगत है

हमारी सम्मति में इस प्रकार के विचार रखने वाले लोगों की बात सही नहीं है। ईश्वरीय-ज्ञान के सिद्धान्त को तर्क से भी सिद्ध किया जा सकता है और ईश्वरीय-ज्ञान की आवश्यकता भी है। दार्शनिक तर्क ईश्वरीय-ज्ञान की यौक्तिक संभावना को स्वीकार करता है।

सन्तों और योगी-महात्माओं की साक्षी

इस सम्बन्ध में पहिले तो यह बात ध्यान में रखने की है कि धरती के प्रायः सभी देशों में समय-समय पर ऐसे सन्त लोग उत्पन्न होते रहे हैं जिन्होंने ऐसी सच्चाइयों (Truths) का प्रकाश किया है जो कि सब देशों और सब कालों के लिये ठीक हैं और जिन के ऊंची श्रेणी की सच्चाइयें होने में बड़े-से-बड़ा विचारक और तार्किक भी इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु इन सन्तों की शिक्षा-दीक्षा कुछ भी नहीं थी, या नहीं के बराबर थी। कितने ही ऐसे

सन्त तो कुछ भी पढ़े-लिखे नहीं होते रहे हैं, बिलकुल निरक्षर ही होते रहे हैं। इन सन्तों की बुद्धि का परिमार्जन विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में अध्ययन और पुस्तक-ज्ञान के द्वारा कुछ भी नहीं हुआ था। सामान्य तर्क यही सिद्ध करेगा कि उस प्रकार की मानसिक शिक्षा से शून्य व्यक्तियों से किसी ऊंची श्रेणी के विचार की आशा नहीं की जा सकती। और अनेक बातों में ये सन्त लोग अपनी बुद्धि की विकास-शून्यता और लघुता का भारी परिचय भी देते थे। तब प्रश्न होता है कि समान्य शिक्षा से शून्य और अल्प मेधा-शक्ति वाले ये सन्त लोग उस प्रकार की ऊंची श्रेणी की सार्वभौम और सार्वकालिक सच्चाइयें (Truths) कैसे प्रकट कर सके ? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि इन सन्तों के इस प्रकार के ऊंचे ज्ञान-प्रकाश की तह में "दैवी-प्रेरणा" (Divine Inspiration) काम कर रही होती है। इन सन्तों का इस प्रकार का ज्ञान ईश्वरीय होता है, ईश्वर द्वारा दिया हुआ होता है। भारतीय योगियों की परम्परा, जिन के सिद्धान्त का दार्शनिक प्रतिपादन योग-दर्शन (Tne yoga Philaosophy) में किया गया है, इस सम्बन्ध में एक महान् साक्षी है। इस परम्परा में आप को कितने ही पहुंचे हुये योगियों का पता लगेगा जिन्हें ईश्वर का साक्षात्कार हुआ था और जिन्हें "दैवी-प्रेरणा" या ईश्वरीय-ज्ञान मिलता था। इस प्रकार के महात्मा अन्य देशों में भी होते रहे हैं। ऐसे लोग अब भी हो सकते हैं। ऋषि दयानन्द ने लिखा है कि योगी लोग अब भी वेद की सच्चाइयों का समाधि में ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य-जाति के इतिहास में बीच-बीच में ऐसे अनेक सन्त और योगी महात्मा उत्पन्न होते रहते हैं जिन्हें दैवी-प्रेरणा या ईश्वरीय-ज्ञान भी मिलता रहता है।

भाषा की उत्पत्ति की साक्षी

ईश्वरीय-ज्ञान के सिद्धान्त के समर्थन में एक और भी प्रबल युक्ति है। जिस का कभी भी खण्डन नहीं किया जा सकता। वह युक्ति है "भाषा की उत्पत्ति" की। ईश्वरीय-प्रेरणा के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना इस प्रश्न का समाधान नहीं हो सकता कि मनुष्य ने भाषा कैसे सीखी। संसार में "भाषा" का प्रवेश ही नहीं हो सकता जब तक कि ईश्वर सृष्टि के प्रारम्भिक मनुष्यों को कोई भाषा न सिखाये।

हम भाषा सदा दूसरों से सीखते हैं। मैं जो भाषा बोलता हूं वह मैंने अपने माता-पिता और गुरुओं से सीखी है। मेरे माता-पिता और गुरुओं ने वह

भाषा अपने माता-पिता और गुरुओं से सीखी थी। उन के माता-पिता और गुरुओं ने वह भाषा अपने माता-पिता और गुरुओं से सीखी थी। और उन्होंने अपने माता-पिता और गुरुओं से वह भाषा सीखी थी। इसी प्रकार चलते-चलते हम सृष्टि के शुरू तक पहुंच जायेंगे। सृष्टि के शुरू के मनुष्य ने—सृष्टि के शुरू में चाहे मनुष्य का नर-मादा का एक जोड़ा उत्पन्न हुआ हो और चाहे अनेक— भाषा किस से सीखी ? सृष्टि के आरंभ के मनुष्य का तो कोई मानव माता-पिता और गुरु था नहीं। वह तो सब से पहिला मानव स्वयं था। हमें अगत्या यह मानना पड़ता है कि सृष्टि के आरंभ के मनुष्य को "भाषा" उसे बनाने वाले परमेश्वर ने ही सिखाई थी।

हम भाषा बिना सिखाये नहीं सीख सकते। हम स्वयं कोई भाषा अपने आप नहीं बना सकते। यदि किसी बालक को ऐसी जगह रख दिया जाये जहां उसे कोई भी मानव-भाषा बोलने वाला मनुष्य न मिल सके— उसे कोई भी भाषा सुनने को न मिले—तो वह बालक अपनी मृत्यु तक भी किसी मानव-भाषा का बोलना न सीख सकेगा। सम्राट् अकबर ने और असीरिया के महाराज असुर बाणीपाल (Asur Banipal) ने इस प्रकार के परीक्षण किये थे[1]। महाराज बाणीपाल ने एक बालक को बारह वर्ष तक एकान्त जंगल में रखा था। बालक से कोई व्यक्ति बात नहीं करता था। उसे चुप-चाप भोजन खिला दिया जाता था। बारह वर्ष के बाद जब बालक को महाराज बाणीपाल के सामने लाया गया तो वह बकरी की भांति "में-में" करता था। अनुसंधान करने पर पता चला कि वहां जंगल में एक बकरी रहती थी, उसी की आवाज़ सुन कर बालक "में-में" करने लग गया था। वह अपने आप कोई मानव-भाषा बोलना न सीख सका था। सम्राट् अकबर ने जो परीक्षा की थी उस का परिणाम भी यही रहा था। उस परीक्षण का बालक भी कोई मानव-भाषा बोलना न सीख सका था।

अनेक वर्ष हुए बरेली के अनाथालय में एक बालक लाया गया था जो कच्चा मांस खाता था और भेड़िये की तरह चलता था और गुर्राता था। वह कोई मानव-भाषा नहीं बोल सकता था। अनुसन्धान करने पर ज्ञात हुआ था कि उस बालक को छोटी अवस्था में भेड़िया उठा कर ले गया था और भेड़िये ने ही उसे पाला था इसी से यह भेड़िये के से आचरण करता था। अनाथालय में रह कर उस बालक ने धीरे-धीरे हिन्दी बोलना सीखा। इसी भांति कई

---

१. भारतवर्ष का इतिहास, प्रथम भाग, आचार्य रामदेवकृत, पृष्ठ २७।

वर्ष की बात है बंगाल के सुन्दरवन नामक जंगल में शिकारियों ने दो लड़कियें पकड़ी थीं। एक की आयु १३ वर्ष के लगभग थी और दूसरी की ६ वर्ष के लगभग। दोनों लड़कियें हाथ और पैर ज़मीन पर रख कर भेड़िये की तरह चलती थीं, भेड़िये की तरह ही गुर्राती थीं और उसी की तरह ही कच्चा मांस खाती थीं। ये दोनों लड़कियें कोई भी मानव-भाषा नहीं बोल सकती थीं। बचपन में भेड़िया इन लड़कियों को उठा कर ले गया था और उसी ने इन्हें पाला था। इसी से वे भेड़िये का सा आचरण करती थीं। भेड़िये की मांद में से ही इन लड़कियों को पकड़ा गया था। इन लड़कियों को देर तक एक अनाथालय में रखा गया और तब वे धीरे-धीरे बंगला भाषा बोलना सीख सकीं। यह घटना "टाइम्स आफ़ इण्डिया, इलस्ट्रेटिड वीकली" (Times of India, Illustrated Weekly) में छपी थी। अभी हाल की बात है लखनऊ के चिड़ियाघर में "रामू" नाम का एक बालक जंगल से पकड़ कर लाया गया था। यह बालक भी हाथ-पैर ज़मीन पर रख कर भेड़िये की तरह चलता था, उसी की तरह कच्चा मांस खाता था और उसी की तरह गुर्राता था। यह बालक भी कोई मानव-भाषा नहीं बोल सकता था। भेड़िये की संगति में रहने के कारण वैसा ही आचरण करता था। मनुष्यों के सम्पर्क में रख कर धीरे-धीरे इस बालक को हिन्दी सिखाई जाने लगी थी। यह घटना अनेक समाचार-पत्रों में छपी थी। यदि मनुष्य स्वयं अपने आप कोई भाषा सीख सकता या बना सकता होता तो ये सभी बालक वैसा कर लेते। पर मनुष्य दूसरे मनुष्य से बिना सीखे स्वयं कोई भाषा सीख सकने या बना सकने की योग्यता ही नहीं रखता।

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विकासवाद का सिद्धान्त मिथ्या है

विकासवादियों का यह कहना नितान्त असत्य है कि आदि काल के मनुष्य ने धीरे-धीरे, अनेक पीढ़ियों में, भाषा का स्वयं विकास किया था। जैसा ऊपर की पंक्तियों में कहा गया है मनुष्य स्वयं कोई भाषा नहीं सीख और बना सकता। फिर, धीरे-धीरे अनेक पीढ़ियों में मनुष्य द्वारा भाषा का विकास किये जाने के सिद्धान्त में यह बात अपने आप आ जाती है कि एक पीढ़ी के लोगों ने अपने से पहिली पीढ़ी के लोगों से भाषा सीखी। सर्वप्रथम मनुष्य ने भाषा किस से सीखी ? यदि आदि-युग का अविकसित मस्तक वाला मनुष्य अपने लिये स्वयं किसी भाषा का निर्माण कर सकता था तो आज का बहुत अधिक विकसित मस्तक वाला मनुष्य अपने लिये किसी भाषा का स्वयं निर्माण क्यों नहीं कर पाता ? विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार आज-कल के योरोप

और अमरीका के लोगों का मस्तक बहुत अधिक विकसित है। योरोप और अमरीका के लोगों ने विज्ञान में, साहित्य में और भाषा में कितनी आश्चर्य-जनक उन्नति कर रखी है ! विकास और उन्नति की चरम सीमा पर पहुंचे हुए आज के जर्मन, फ्रांसीसी, इङ्गलिश, अमरीकन अथवा रूसी माता-पिताओं के बच्चों में यह शक्ति नहीं है कि वे अपने माता-पिताओं, गुरुओं और पड़ौसियों से अलग एकान्त जंगल में रह कर अपनी-अपनी मातृ-भाषाओं का बोलना सीख सकें। जर्मन भाषा बोलने वाले लोगों के सम्पर्क में रह कर ही कोई जर्मन बच्चा जर्मन भाषा बोलना सीख सकता है। यदि जर्मन बच्चा किसी अन्य भाषा को बोलने वाले लोगों के सम्पर्क में रहेगा तो वह अपनी मातृभाषा बोलना न सीख कर उन लोगों की भाषा बोलना सीख जायेगा। और यदि वह बच्चा आरम्भ से किसी भी मनुष्य के सम्पर्क में नहीं रहेगा तो वह कोई भी भाषा बोलना न सीख सकेगा। यही अवस्था फ्रांसीसी, इङ्गलिश, अमरीकन अथवा रूसी बच्चे के साथ होगी।

आदि-सृष्टि में परमेश्वर ने भाषा सिखाई

यह ध्रुव सत्य है कि मनुष्य किसी दूसरे से बिना सीखे कोई भाषा नहीं जान सकता। तो फिर सृष्टि के आदि-काल के मनुष्य ने "भाषा" कैसे सीखी ? इस प्रश्न का सीधा और स्पष्ट उत्तर यह है कि आदि-सृष्टि में जहां परमात्मा ने मनुष्य को बनाया वहां उसी ने मनुष्य को भाषा भी सिखाई। ईश्वर ने ही आरम्भ-काल के मनुष्यों को एक भाषा सिखाई जिस के अपभ्रंशों द्वारा कालक्रम में बनी हुई सैंकड़ों भाषायें आज हमें संसार में दिखाई देती हैं।

भाषा सिखाने में ज्ञान का सिखाना स्वयं ही आ जाता है

भाषा सिखाने में ज्ञान का सिखाना स्वयं ही आ जाता है। क्योंकि भाषा भिन्न-भिन्न पदार्थों के पारस्परिक सम्बन्धों का ही वर्णन करती है। और पदार्थों के पारस्परिक सम्बन्धों से परिचिति का नाम ही ज्ञान है। परमात्मा ने आदि-काल के मनुष्य को भाषा भी सिखाई और भाषा द्वारा सूचित किये जाने वाले पदार्थों और उन के पारस्परिक सम्बन्धों का भी ज्ञान कराया। इस प्रकार हम देखते हैं कि आदि-सृष्टि-काल में "भाषा की दैवी प्रेरणा" का सिद्धान्त "ज्ञान की दैवी प्रेरणा" के सिद्धान्त को भी अपने अन्दर लिये हुए है और इस प्रकार आदि-सृष्टि-काल में मनुष्य को "ज्ञान"––भाषा और ज्ञान––देने वाला गुरु परमेश्वर है।

भाषा-शास्त्रियों के पास भाषा की उत्पत्ति का समाधान नहीं है

भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भाषा-विज्ञान के अनेक पण्डित

विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार यद्यपि ऐसा मानते और लिखते हैं कि मनुष्य ने धीरे-धीरे विकास कर के स्वयं ही भाषा की उत्पत्ति कर ली है और उस का बोलना सीख लिया है, परन्तु इन भाषाशास्त्रियों के पास अपने इस मत के समर्थन में कोई भी पुष्ट प्रमाण नहीं है। उन की यह स्थापना केवल कल्पना-मात्र है। दूसरी ओर अनेक ऐसे भाषाशास्त्री भी हैं जो स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि भाषा-विज्ञान के पण्डितों के पास कोई ऐसे प्रमाण नहीं हैं जिन के आधार पर कहा जा सके कि भाषा की उत्पत्ति किस प्रकार हुई।

कोलम्बिया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर एडगर स्टूर्टिवेण्ट अपनी पुस्तक "भाषा विज्ञान की भूमिका" (An Introduction to Linguistic Science) में इस सम्बन्ध में कहते हैं—"बहुत से निरर्थक तर्क-वितर्क के पश्चात् भाषाशास्त्री इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि उन के पास जो सामग्री है उस से मानव-भाषा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई प्रमाण नहीं मिलता[१]।"

इसी प्रकार अपनी पुस्तक "भाषा की कहानी" (The Stoty of Language) में इटली के विद्वान् मेरीयोपाई ने लिखा है—"यदि कोई एक बात ऐसी है जिस पर सब भाषाशास्त्री एक मत हैं तो वह यह है कि अभी तक मानव-भाषा की उत्पत्ति की समस्या का कोई समाधान नहीं मिला है[२]।"

इसी भांति अमरीका के विद्वान् जे० वैण्ड्रीज़ ने अपनी पुस्तक "भाषा" (Language) में लिखा है—"भाषा की उत्पत्ति के प्रश्न का कोई सन्तोष-जनक समाधान नहीं है[३]।"

इसी विषय पर लिखते हुये "सामाजिक विज्ञानों का विश्वकोष" (Encyclopaedia of Social Sciences) में प्रसिद्ध भाषाशास्त्री श्री एडवर्ड सैपीर ने लिखा है—"भाषा की उत्पत्ति की समस्या को सुलझाने के अनेक प्रयत्न किये गये हैं। परन्तु इन में से अधिकांश प्रयत्न कल्पना-मात्र से अधिक

---

१. After much futile discussion, linguists have reached the conclusion that the data with which they are concerned yield little or no evidence about the origin of human speech. (An Introduction to Linguistic Science by Edgar Sturtivent, page 40, New Haven.)

२. If there is one thing on which all linguists are fully agreed, it is that the problem of the origin of human speech is still unsolved. (The Story of Language by Mariopei, P. 18, London, 1956.)

३. The problem of the origin of language does not admit of any satisfactary solution. (Language by J. Vendres. P. 315, London 1952.)

कुछ नहीं हैं। सामान्य रूप में भाषाशास्त्रियों की अब इस प्रश्न के समाधान में रुचि नहीं रही है। इस के दो कारण हैं। एक तो यह कि अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि आज कोई ऐसी भाषा विद्यमान नहीं है जिसे सही तौर पर आदिकाल की भाषा कहा जा सके, तथा पुरातत्त्व-विज्ञान के अनुसन्धानों ने मनुष्य के सांस्कृतिक भूतकाल को इतना लम्बा कर दिया है कि आज की प्रचलित भाषाओं के अध्ययन से जो कुछ पता लगता है उस से बहुत अधिक पीछे जाना बिलकुल व्यर्थ है। और दूसरे यह कि मनोविज्ञान-सम्बन्धी हमारा ज्ञान, विशेषकर मन के विचारों को ध्वनि आदि के चिन्हों या प्रतीकों द्वारा प्रकट करने वाली मानसिक प्रक्रियाओं-विषयक हमारा ज्ञान, पर्याप्त सही नहीं समझा जाता अथवा इतना अधिक नहीं समझा जाता कि वह भाषा की उत्पत्ति की समस्या के समाधान में विशेष सहायता कर सके[१]।"

भाषा और ज्ञान देने वाले आदि-गुरु परमात्मा ही हैं

इस प्रकार भाषा-विज्ञान के पास इस प्रश्न का कोई समाधान नहीं है कि पहले-पहल भाषा कैसे उत्पन्न हुई। युक्ति और तर्क से इस प्रश्न का एकमात्र सहो उत्तर यही मिलता है कि पहले-पहल परमात्मा ने ही आदिकाल के मनुष्यों को कोई भाषा सिखाई। और वह भाषा सिखाते हुए परमात्मा ने उस भाषा द्वारा सूचित किये जाने वाले पदार्थों और उन के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान भी स्वयं ही सिखाया। भाषा सिखाने में ज्ञान सिखाने की यह बात भी स्वयं ही आ जाती है। इस प्रकार मनुष्य को पहले-पहल भाषा और ज्ञान सिखाने वाले आदि-गुरु परमात्मा ही हैं। इसी लिये

---

१. Many attempts have been made to unravel the origin of language, but most of these are hardly more than exercises of the speculative imagination. Linguists as a whole, have lost interest in the problem and this for two reasons. In the first place, it has come to be realised that there exist no truly primitive languages in a psychological sense, that modern researches in archaeology have indefinitely extended the time of man's Cultural past and that it is therefore vain to go much beyond the perspective opened up by the study of actual languages. In the second place, our knowledge of psychology, particularly of the symbolic processes in general, is not felt to be sound enough, or far reaching enough, to help materially with the problem of the emergence of speech. (Encyclopaedia of the Social Sciences, Vol. 9, Page 158. Article about the Origin of Language by Edward Sapdir.)

योगदर्शन में महर्षि पतञ्जलि ने कहा है कि "काल के बन्धन से रहित वह परमात्मा हमारे पूर्वज गुरुओं का भी गुरु है[१]।"

पहले-पहल परमात्मा मनुष्य को भाषा सिखाते हैं, भाषा की उत्पत्ति-विषयक इस आस्तिक सिद्धान्त की ओर अब अनेक भाषाशास्त्री भी आने लगे हैं। अंग्रेजी भाषा के जगत्-प्रसिद्ध विश्वकोष "ऐनसाइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका" (Encyclopaedia Britanica) में इसी समस्या पर विस्तृत विचार करते हुए लिखा गया है—"कुछ भाषा-शास्त्री, जिन में प्रसिद्ध विद्वान् डब्ल्यू श्मिदत (W. Sehmidt) भी सम्मिलित हैं, भाषा की उत्पत्ति-विषयक प्रचलित सिद्धान्तों की अयुक्तता को अनुभव करने लगे हैं और प्राकृतिक तरीके से भाषा की उत्पत्ति के समाधान के प्रयत्नों को छोड़ कर इस धार्मिक विश्वास की ओर आने लगे हैं कि आदिकाल के मनुष्यों को पहिली भाषा स्वयं परमात्मा ने सीधे रूप में सिखाई थी[२]।"

ईश्वरीय ज्ञान की तार्किक संभावना के सम्बन्ध में ऊपर के पृष्ठों में जो कुछ कहा गया है उस से यह स्पष्ट है कि इलहाम अथवा दैवी प्रेरणा या ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त दार्शनिक तर्क से अस्वीकृत नहीं है।

३

आदि-सृष्टि में परमात्मा ने वैदिक भाषा सिखाई

ईश्वरीय ज्ञान की सिद्धि में एक प्रबल युक्ति हम ने "भाषा की उत्पत्ति" की दी है। तब प्रश्न होता है कि वह कौन सी ईश्वरीय भाषा है जिसे परमेश्वर ने आदिसृष्टि के मनुष्यों को पहले-पहल सिखाया ? हम भारतीय आर्य (हिन्दु) लोगों की सम्मति में आदिसृष्टि के मनुष्यों को परमेश्वर द्वारा सिखाई गई वह ईश्वरीय भाषा वैदिक संस्कृत है। आदिसृष्टि के मनुष्यों को परमात्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार वेदों के रूप में वैदिक भाषा सिखाई और उस भाषा को सिखाते हुए उस भाषा द्वारा वेदों में वर्णित पदार्थों और उन के पारस्परिक सम्बन्धों का भी ज्ञान करा दिया। वैदिकधर्मी आर्यों की परम्परा में यह माना जाता है कि आदिसृष्टि में जो

---

१. स पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। योगदर्शन १. २६।

२. Some scholars (among them quite recently W. Schmidt) see the insufficiency of usual theories, and giving up all attempts at explaining it in a natural way fall back on the religious belief that the first language was directly given to first men by God through miracle. (Encyclopaedia Britanica, Vol. 13 Page 702, 1951 Impression.)

अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए थे उन में अग्नि, वायु, सूर्य, और अंगिरा नामक चार ऋषियों के हृदयों में एक-एक वेद का प्रकाश कर के परमात्मा ने उन्हें वैदिक संस्कृत भाषा भी सिखा दी और वेदों की उस भाषामें निबद्ध सारा ज्ञान भी सिखा दिया। फिर इन चारों ऋषियों ने आदिसृष्टि में उत्पन्न अन्य मनुष्यों को अपने उपदेश द्वारा वेद और उन की भाषा का ज्ञान करा दिया। इस प्रकार आदि सृष्टि के सब मनुष्य वैदिक संस्कृत भाषा को बोलने लगे और वेद में वर्णित ज्ञान को सीख कर अपना जीवन-व्यवहार चलाने के योग्य बन गये।

वैदिक भाषा सब भाषाओं की जननी है

आज संसार में जो विभिन्न भाषायें पाई जाती हैं वे सब परम्परया वैदिक भाषा के अपभ्रंशों से ही बनी हुई हैं। आदिसृष्टि के समय जिस प्रदेश में[1] पहले-पहल मनुष्यों की उत्पत्ति हुई उस प्रदेश में वे लोग कुछ समय तो एकत्र रहे। फिर धीरे-धीरे जन-संख्या बढ़ने लगी। और वह उस प्रदेश में समा न सकी। वहां से लोग धीरे-धीरे दूर-दूर के देशों की ओर फैलने लगे। भाषा के शिक्षण और उच्चारण में पूरी सावधानी न रहने के कारण तथा नये प्रदेशों की जल-वायु की भिन्नता के कारण लोगों के उच्चारण में फर्क पड़ने लगा और वैदिक भाषा के शब्दों का अपभ्रंश होने लगा। ज्यों-ज्यों समय बीतने लगा और लोग अपने मूल-स्थान से और-और आगे बढ़ने लगे त्यों-त्यों ऊपर निर्दिष्ट दोनों कारणों से अपभ्रंश अधिकाधिक बढ़ने लगे। अपभ्रंशों के भी अपभ्रंश होने लगे। इस प्रकार यह अपभ्रंशों की और अपभ्रंशों के भी अपभ्रंशों की प्रक्रिया उत्तरोत्तर बढ़ती गई। आगे चल कर नये पदार्थों और नये विचारों के लिये लोग नये-नये शब्द भी बनाने लगे। इन शब्दों के अपभ्रंश की और उन के अपभ्रंशों के अपभ्रंश की प्रक्रिया भी उत्तरोत्तर उसी प्रकार चलने लगी। और नये-नये विचारों और पदार्थों के लिये नये-नये शब्द बनाये जाने की प्रक्रिया भी उसी प्रकार चलती रही। लोग जितना-जितना दूर देशों में बढ़ते गये उपर्युक्त कारणों से उतना-उतना उन की भाषा में भिन्नता बढ़ती गई। और लाखों-करोड़ों वर्षों के अरसे में उपर्युक्त प्रक्रिया के परिणाम-स्वरूप

१ ऋषि दयानन्द के मन्तव्यानुसार पहले-पहल मनुष्य-सृष्टि तिब्बत में हुई थी। वहाँ से धीरे-धीरे मनुष्य धरती के सब देशों में फैल गये। लोकमान्य तिलक की सम्मति में मनुष्य-सृष्टि उत्तरीय ध्रुव के प्रदेश में हुई थी। कई विद्वान् मध्य-एशिया को मनुष्यों का आदि-उत्पत्ति-स्थान मानते हैं। कई विद्वान् मध्य योरोप को मनुष्यों का आदि-उत्पत्ति-स्थान मानते हैं। तथा कई विद्वान् पंजाब को मनुष्यों का आदि-उत्पत्ति-स्थान मानते हैं।

संसार में वे सब भाषायें बन गईं जिन्हें धरती के भिन्न-भिन्न देशों के निवासी आज बोल रहे हैं। इन सब भाषाओं का परम्परया उद्गम-स्थान वैदिक भाषा ही है। यदि आदि-सृष्टि में परमात्मा ने मनुष्यों को वैदिक भाषा न सिखाई होती तो वे अपने आप कोई भाषा नहीं सीख और बना सकते थे। जैसा हम ने अभी ऊपर दिखाया है मनुष्य किसी दूसरे से सीखे बिना कोई भाषा बोलना नहीं सीख सकता। कोई भाषा अच्छी तरह बोलना सीखने के पश्चात् मनुष्य यह तो कर सकता है कि नये विचारों और पदार्थों के लिये नये शब्द घड़ ले, परन्तु आरम्भ में मनुष्य किसी भाषा का बोलना किसी दूसरे सिखाने वाले से ही सीख सकता है। प्रारम्भ में परमात्मा ने मनुष्यों को वैदिक भाषा सिखाई और उस के अनन्तर, ऊपर कही गई प्रक्रिया के अनुसार, एक बहुत लम्बे अरसे में उस भाषा से आज की अनेक भाषायें बन गईं। इस प्रकार आज की प्रचलित भाषाओं की मूल जननी वैदिक भाषा ही है। इस युग के भाषा-विज्ञान के पण्डितों ने आज की प्रचलित भाषाओं में ऐसे अनेक शब्दों को खोज निकाला है जो वैदिक भाषा के शब्दों से या तो सर्वांश में ही मिलते हैं या उन से बहुत अधिक समानता रखते हैं। भाषा-शास्त्रियों की यह खोज भी इसी ओर निर्देश करती है कि प्रचलित भाषाओं की मूल जननी वैदिक भाषा ही है, प्रचलित सब भाषायें अपभ्रंश होते-होते वैदिक भाषा से ही निकली हैं। भाषा-विज्ञान के इस अनुसंधान से यह भी इंगित होता है कि आदि सृष्टि में सब मनुष्य किसी एक ही स्थान पर रहते थे जहां से वे कालान्तर में धरती के भिन्न-भिन्न देशों में फैल गये।

वेद संसार के सब से पुराने ग्रन्थ हैं

प्रश्न हो सकता है कि परमात्मा ने आदि-सृष्टि के मनुष्यों को वैदिक भाषा ही सिखाई थी, कोई अन्य भाषा नहीं, इस में क्या प्रमाण है ? इस सम्बन्ध में हमारा निवेदन है कि संसार की पुरानी भाषाओं और उन भाषाओं के साहित्य का सूक्ष्म और विवेचनात्मक अध्ययन करने वाले भाषा-शास्त्री इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि वेद मनुष्य-जाति के सब से पुराने ग्रन्थ हैं। इस सम्बन्ध में कुछ अति प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियें नीचे उद्धृत की जाती हैं।

जर्मनी के सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री मैक्समूलर महोदय ने अपनी पुस्तक "प्राचीन संस्कृत साहित्य का इतिहास" में लिखा है—"विद्यमान ग्रंथों में वेद सब से अधिक पुराना है। वेद होमर की कविताओं से भी अधिक पुराना है[1]।"

---

१. The Veda is the oldest book in existence, more ancient than the Homeric poems, because it presents an earlier phase of human thought

अपने द्वारा सम्पादित और मुद्रित ऋग्वेद के सायण-भाष्य के प्रथम भाग की प्रस्तावना में श्री मैक्समूलर महोदय ने लिखा है—"मेरा निश्चित मत है कि वेद शताब्दियों तक विद्वानों के अध्ययन का विषय बना रहेगा और मनुष्य-जाति के पुस्तकालय में सब से अधिक पुरानी पुस्तक समझा जाता रहेगा[१]।" इसी ग्रन्थ के चौथे भाग की प्रस्तावना में श्री मैक्समूलर महोदय लिखते हैं—"आर्य-जगत् (भारत, ईरान, योरोप आदि) का सब से पुराना ग्रन्थ ऋग्वेद है। ब्राह्मण लोगों की ये पवित्र ऋचायें सारे संसार के साहित्य में अद्वितीय हैं। और इन की जिस प्रकार रक्षा होती रही है उसे तो चमत्कारपूर्ण कहा जा सकता है[२]।"

अपनी पुस्तक "वेदों की शिक्षा" में रैवरैंड मौरिस फिलिप महोदय ने लिखा है—"बाइबिल के पुरातन खण्ड (ओल्ड टैस्टामैंट = Old Testament) की पुस्तकों के इतिहास और काल-गणना में किये गये नवीनतम अनुसन्धानों के पश्चात् अब हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ऋग्वेद न केवल आर्य लोगों का प्रत्युत सारे संसार का सब से पुराना ग्रन्थ है[3]।"

श्रीयुत बालगङ्गाधर तिलक ने अपनी पुस्तक "वेदों में आर्यों का उत्तरीय ध्रुव का घर" में ऋग्वेद को "आर्य (योरोप, ईरान, भारत आदि के) लोगों का सब से पुराना ग्रन्थ[४]" बताया है।

श्री लुई जैकालियट महोदय ने अपनी पुस्तक "भारत में बाइबिल" में कहा है—"वेद के शब्द अनादि-अनन्त सत्य ज्ञान से युक्त हैं, वेद तत्त्वोपदेश

---

and feeling.—Max Muller, History of Ancient Sanskrit Literature, Page 557.

१. The Veda, I feel convinced, will occupy scholars for centuries to come, and will take and maintain its position for ever as the most ancient of books in the library of mankind.—The Rigveda Sanhita, Vol. I., Edition 1869, Preface, Page 10.

२. The Rigveda is the most ancient book of the Aryan world. The sacred hymns of the Brahmanas stand unparalleled in the literature of the whole world. And their preservation might well be called miraculous.—Rigveda, Vol. 4th, Page 80, Edited by—Maxmuller.

३. After the latest researches into the history and chronology of books of old testament, we may safely now call the Rigveda as the oldest book, not only of the Aryan humanity, but of the whole world.—Rev. Morris Philip in the Teaching of the Vedas, Page—231.

४. "The oldest book of the Aryan race."—B. G. Tilak in "The Arctic Home in the Vedas," Edition 1903, Page 465.

का भी तत्त्वोपदेश है जो कि हमारे पुरखाओं पर परमात्मा ने प्रकट किया था, वेद सृष्टि के आदि-काल का विशुद्ध सिद्धान्त-ज्ञान है और परमोत्तम शिक्षा है[१] ।"

श्री मोशिये लियो डेलबो ने पेरिस के अन्ताराष्ट्रिय साहित्यिक-संघ में पढ़े गये अपने एक निबन्ध में ऋग्वेद के सम्बन्ध में कहा था—"ग्रीस और रोम का कोई भी पुराना स्मारक (Monument) ऋग्वेद से अधिक बहुमूल्य नहीं है ।" इन महोदय के इस कथन का भाव यह है कि पुरानेपन में ऋग्वेद ग्रीस और रोम के पुराने-से-पुराने ग्रन्थों से भी पुराना है ।

इन विद्वानों की भांति और भी अनेक विद्वान् हैं जो प्राचीन भाषाओं और उन के साहित्य का अध्ययन कर के इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि ऋग्वेद संसार का सब से पुराना ग्रन्थ है ।

वेद की भाषा संसार की सब से पुरानी भाषा है

जब इन विद्वानों की सम्मति में ऋग्वेद संसार की सबसे पुरानी पुस्तक है तो उसकी भाषा जो कि वैदिक संस्कृत भाषा है अपने आप ही संसार की सबसे पुरानी भाषा हो गई । वैदिक भाषा से पुरानी और कोई भाषा नहीं है । आदि-सृष्टि के मनुष्यों को परमात्मा ने यही संसार की सब से पुरानी वैदिक भाषा सिखाई थी और इसी भाषा में परमात्मा ने सृष्टि के आदि-काल के लोगों को वेदों का उपदेश दिया था ।

वेद का काल

भारतीय आर्य लोगों के मन्तव्य और गणना के अनुसार इस वर्तमान सृष्टि को बने हुए विक्रम सम्वत् १९९३ में १,९७,२९,४९,०५७ (एक अर्ब, सत्तानवे करोड़, उनत्तीस लाख, उनन्चास हजार, सत्तावन) वर्ष हो चुके हैं । वेद का उपदेश भी सृष्टि के आदि में ही मनुष्यों को परमात्मा ने दिया था । इस प्रकार वेद का काल भी भारतीय आर्य लोगों में सृष्टि का उत्पत्ति-काल ही माना जाता है । अर्थात् हम आर्यों के अनुसार वेद आदि-सृष्टि के हैं

---

१. The Veda is the word of eternal wisdom, the principle of principles as revealed to our fathers....... ...The pure primeval doctrine, the sublime instructor.—Louis Jacolliot in The Bibe in India, edition 1870, Page 10—12.

२. There is no monument of Greece or Rome more precious than the Rigveda.—(Mons. Leon Delbos, in his Paper on the Vedas read before the Inter-national Litereary Association at Paris, on 14th july 1784, the venerable Victor Hugo being in the Chair.)

और १,६७,२६,४६,०५७ वर्ष पुराने हैं। आज कल की योरोपीयन ऐतिहासिक पद्धति से वेद का अध्ययन करने वाले पाश्चात्य विद्वान् और उन के अनुयायी भारतीय विद्वान् वेदों को इतना पुराना नहीं मानते हैं। शुरू-शुरू में तो ये विद्वान् वेद को मुश्किल से ईसा से डेढ-दो हजार वर्ष पुराना ही मानते थे। धीरे-धीरे वेद को अधिकाधिक पुराना माना जाने लगा है। जैकोबी महोदय वेद के काल को ईसा से तीन-चार हज़ार वर्ष पूर्व तक ले गये हैं। श्री तिलक वेद के काल को ईसा से दस हजार वर्ष पूर्व तक ले गये हैं। श्री अविनाशचन्द्र दास इस काल को ईसा से बीस हजार वर्ष पूर्व तक ले गये हैं। श्री डी० ऐन० मुखोपाध्याय इस काल को ईसा से पच्चीस हजार वर्ष पूर्व तक ले गये हैं। पं० दीनानाथ शास्त्री चुलैट वेद के काल को आज से तीन लाख वर्ष पूर्व तक ले गये हैं। और श्री पावगी महोदय की सम्मति में वेद आज से कम-से-कम अढाई-तीन लाख साल पुराना तो है ही, वह इस से भी लाखों साल पुराना हो सकता है।

वेद के अन्वेषक पाश्चात्य विद्वानों ने वेद का काल जो इतना कम माना है। उसमें एक हेतु यह भी रहा है कि ये विद्वान् सृष्टि की आयु भी बहुत कम मानते रहे हैं। पहले योरोप में सृष्टि की आयु लगभग छः हजार साल से अधिक नहीं मानी जाती थी। पर जैसा अभी ऊपर कुछ विद्वानों का मत उद्धृत किया गया है, अब अनेक विद्वान् वेदों को इतना कम पुराना नहीं मानते हैं। अब सृष्टि की आयु भी बहुत अधिक मानी जाने लगी है। सृष्टि चाहे कम पुरानी हो और चाहे बहुत अधिक पुरानी हो, वेदों का उपदेश मनुष्यों को सृष्टि के आरंभ में ही परमात्मा ने दिया था। वैदिक भाषा का संसार को सबसे पुरानी भाषा होना और वेद का संसार का सबसे पुराना ग्रन्थ होना इसी ओर संकेत करते हैं कि वेद सृष्टि के शुरू से चले आ रहे हैं। भारतीय आर्यों की सम्मति में सृष्टि और वेद का जो काल है उस का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

४

ईश्वरीय ज्ञान होने में वेद की अपनी अन्त:साक्षी

इस भाषण के आरम्भ में हमने कहा था कि भारतीय आर्यों के ऋषि-मुनियों, आचार्यों, साधु-सन्तों, और महापुरुषों की प्राय: सारी-की-सारी परम्परा, तथा आर्यों का ब्राह्मण-ग्रन्थों, उपनिषदों, दर्शनों, गीता, रामायण, महाभारत, आयुर्वेद, व्याकरण और पुराण आदि का समग्र साहित्य, एक स्वर से यह

---

१. भारतीय परम्परा और साहित्य में वेदों का जो स्थान और महत्त्व है उसके सम्बन्ध में अधिक विस्तार से जानने के लिए हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" की भूमिका देखिये।

कह रहे हैं कि वेद ईश्वरीय ज्ञान या इलहाम हैं और इन वेदों का प्रकाश परमात्मा द्वारा आदि-सृष्टि के ऋषियों पर हुआ था। वेदों के सम्बन्ध में आर्य-विचारकों और आर्यसाहित्य की यह जो धारणा है उस की पुष्टि स्वयं वेद की अपनी अन्तःसाक्षी से भी होती है। वेद स्वयं अपने आप को सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा दिया हुआ ज्ञान बताते हैं[1]। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद तीनों में एक-एक पुरुष-सूक्त आता है। इन पुरुष-सूक्तों में परमेश्वर द्वारा सब प्रकार की सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है। सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन करते हुए इन पुरुष-सूक्तों में कहा गया है कि "सब के पूजनीय, सृष्टिकाल में सब कुछ देने वाले और प्रलय-काल में सब कुछ नष्ट कर देने वाले उस परम पुरुष परमात्मा से ऋग्वेद उत्पन्न हुआ, सामवेद उत्पन्न हुआ, उसी से छन्द अर्थात् अथर्ववेद उत्पन्न हुआ और उसी से यजुर्वेद उत्पन्न हुआ[2]।" इसी भांति अथर्ववेद के दसवें काण्ड के सातवें और आठवें सूक्तों में परमात्मा का "स्कम्भ" अर्थात् विश्व-ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले सर्वाधार "स्तम्भ" के रूप में वर्णन हुआ है। परमात्मा की अनेक प्रकार की महिमा और विभूतियों का वर्णन इन सूक्तों में किया गया है। इस स्थल पर भी चारों वेदों की उत्पत्ति परमात्मा से ही बताई गई है[3]। इसी प्रकरण में एक दूसरी जगह कहा गया है—"अपूर्व गुणों वाले उस स्कम्भ नामक सर्वाधार परमात्मा ने वेद की वाणियों को प्रेरित किया है, मनुष्यों के हित के लिये प्रदान किया है, वे वेदवाणियें यथार्थ बात बताती हैं[4]।" अथर्ववेद के पांचवें काण्ड के ११ वें सूक्त में भी प्रसंग से वेदों की उत्पत्ति

---

१. इस सम्बन्ध में अधिक विस्तार से जानने के लिये हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" की भूमिका में "वेद के सम्बन्ध में स्वयं वेद की अपनी सम्मति" प्रकरण देखिये।

२. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥ ऋग्. १०. ९०. ९।
यजुः. ३१. ७। अथर्व. १९. ६. १३।

३. यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥
अथर्व. १०. ७. २०।
इन दोनों मन्त्रों की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" की भूमिका में ३१-३२ पृष्ठ पर देखिये।

४. अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्। अथर्व. १०. ८. ३३।
इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" की भूमिका में ३३ पृष्ठ पर देखिये।

का वर्णन किया गया है। वहां परमेश्वर स्वयं अपने सम्बन्ध में कहते हैं कि "क्योंकि मुझ से वेद नामक मेरा काव्य उत्पन्न होता है इस लिये मेरा नाम "जातवेदा:" है[1]।" ऋग्वेद के दसवें मण्डल का ७१ वां सूक्त तो सारा का सारा वेदविषयक ही है। इस सूक्त में वेदों की परमात्मा द्वारा उत्पत्ति का वर्णन करते हुए वेदों को भाषा और ज्ञान के आदि-स्रोत के रूप में उपस्थित किया गया है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में कहा है—"हे महान् ज्ञान से युक्त वेदवाणी के स्वामी परमात्मन्! सृष्टि के आरंभ में मनुष्यों की उत्पत्ति के समय, आदिम ऋषियों ने जो विभिन्न पदार्थों के नामों को धारण करने वाली, बताने वाली, वेद की वाणियों को पहले-पहल प्रेरित किया, प्रचलित किया, वह वेद-ज्ञान आपने अपनी प्रेरणा या प्रेम से इन ऋषियों के हृदय में, बुद्धि में, इस लिये रख दिया और वह इन ऋषियों के द्वारा अन्य मनुष्यों के लिये इस लिये प्रकट हुआ क्योंकि इन आदिम ऋषियों में श्रेष्ठत्व और निष्पापत्व था[2]।" फिर तीसरे मन्त्र में वहीं कहा है—"वेदवाणी का पद और अर्थ के सम्बन्ध से प्राप्त होने वाला ज्ञान, यज्ञ अर्थात् सब के पूजनीय परमात्मा द्वारा प्राप्त होता है। उस वेदवाणी को मनुष्यों ने ऋषियों में प्रविष्ट पाया है। उस वेदवाणी को धारण कर के ऋषियों ने बहुत स्थानों में कर दिया, फैला दिया। उस वेदवाणी को विविध पदार्थों के गुणों का वर्णन करने वाले गायत्री, अनुष्टुप् आदि सात छन्द प्राप्त हो रहे हैं अर्थात् वेदवाणी की रचना गायत्री आदि सात छन्दों में हुई है[3]।" इसी भांति अथर्व. १९. ७१. १ में भी वेद को परमात्मा द्वारा मनुष्यों के कल्याण के लिये दिया गया ज्ञान बताया गया है। इस मन्त्र में परमात्मा ही बोल रहे हैं। वे कहते हैं—"हे मनुष्यो! तुम्हारे लिये मैंने वरदान देने वाली वेद-माता की स्तुति कर दी है, वह मैंने तुम्हारे आगे प्रस्तुत कर दी है। वह वेद-माता तुम्हें चेष्टाशील, द्विज और पवित्र

---

१. काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः। अथर्व. ५. ११. २।

इस मन्त्र की और जिस सूक्त (अथर्व. ५. ११) का यह मन्त्र है उस की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वरुण की नौका" में देखिये।

२. बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः॥ ऋग्. १०. ७१. १।

३. यज्ञेन वाचः पदवीयमायन् तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभिसंनवन्ते॥ ऋग्. १०. ७१. ३।

ये दोनों मन्त्र जिस सूक्त (ऋग्. १०. ७१) के हैं उस सारे सूक्त की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" में ४-१३ पृष्ठ पर देखिये।

बनाने वाली है। आयु अर्थात् दीर्घजीवन, प्राण, सन्तान, पशु, कीर्ति, धन-सम्पत्ति और ब्रह्मवर्चस् अर्थात् ब्राह्मणों के तेज अर्थात् विद्या-बल रूप वरों को यह वेद-माता प्रदान करती है। वेद-माता के स्वाध्याय और तदनुसार आचरण द्वारा प्राप्त होने वाले इन आयु आदि सातों पदार्थों को मुझे दे कर, उन्हें मदर्पण——ब्रह्मार्पण——कर के, ब्रह्मलोक को, मोक्ष को प्राप्त करो[1]।" इस मन्त्र में परमात्मा द्वारा मनुष्यों को वेदों का उपदेश दिये जाने का प्रयोजन संक्षेप में बड़े स्पष्ट और सुन्दर शब्दों में कह दिया गया है। परमात्मा क्योंकि मनुष्यों को मन्त्रोक्त सब कल्याणकारी वस्तुयें देना चाहते हैं इसीलिये उन्हों ने सृष्टि के शुरू में वेद का ज्ञान दिया था। वेद की इन और ऐसी ही अन्य अन्तः-साक्षियों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वेद ही सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा द्वारा दिया हुआ ज्ञान है।

५

परमात्मा का वेदोपदेश करने का प्रकार

ईश्वरीय-ज्ञान या इलहाम के सिद्धान्त पर बात करते हुए आलोचक लोग एक शंका यह किया करते हैं कि परमात्मा का कोई शरीर और हाथ आदि तो है ही नहीं, तो वह ईश्वरीय-ज्ञान कही जाने वाली पुस्तक को कैसे लिखेगा? परमात्मा का शरीर न होने से उस के मुख, जिह्वा और वाणी आदि भी नहीं है, तब वह बोलेगा कैसे और अपने ज्ञान को मनुष्यों को सिखायेगा कैसे? इस प्रकार की शंकायें निराधार हैं। परमात्मा अपने ज्ञान को कागज़ आदि पर लिख कर पुस्तक के रूप में मनुष्यों को नहीं देते हैं। अतः इस कार्य के लिये परमात्मा के हाथ आदि होने की कोई आवश्यकता नहीं है। परमात्मा अपने ज्ञान को मुंह से बोल कर भी मनुष्यों को नहीं सिखाते। अतः इस काम के लिये परमात्मा के मुख और जिह्वा आदि होने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। परमात्मा तो सर्वव्यापक हैं। वे मनुष्यों के आत्माओं में भी व्यापक हैं। जिन मनुष्यों को परमात्मा ने अपना ज्ञान देना होता है उन के आत्मा में ज्ञान का प्रकाश परमात्मा कर देते हैं क्योंकि वे उन के आत्मा में रमे हुये हैं। उन में रमा हुआ होने के कारण परमात्मा अन्दर-अन्दर ही उन के आत्मा में अपने ज्ञान का प्रकाश कर देते हैं। जब सृष्टि के

१. स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्। अथर्व० १९. ७१. १।

इस मन्त्र की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" में पृष्ठ १ पर देखिये।

आरम्भ में परमात्मा ने आदिम ऋषियों को वेद का ज्ञान दिया तो उन के आत्मा में रमा हुआ होने के कारण परमात्मा ने उन के आत्मा में अन्दर-ही-अन्दर अपना यह ज्ञान प्रकाशित कर दिया। वेद की भाषा भी परमात्मा ने आदिम ऋषियों को उन के आत्मा में रमा हुआ होने के कारण भीतर से ही सिखा दी। हम जब किसी विषय पर चुपचाप बैठ कर चिन्तन करते हैं तो विचार की उस समय की शृंखला में मुख और जिह्वा को विना हिलाये और विना काम में लाये ही, हमारे मन में सूक्ष्म रूप में भाषा बोली जा रही होती है। यह मन-मन में बोली जा रही सूक्ष्म भाषा हमारे द्वारा बोली जाने वाली स्थूल भाषा के संस्कारों की स्मृति-रूप होती है। वेद को सिखाने के समय परमात्मा ऋषियों के मन में वेद और उस की भाषा के संस्कार डाल देते हैं और उन संस्कारों को उद्बुद्ध कर देते हैं। इस से वेद का ज्ञान और वेद की भाषा ऋषियों के मन में जाग उठती है। वे वेद को समझ जाते हैं और उस की भाषा को बोलने लगते हैं। एक आत्मा के द्वारा—परमात्मा भी एक आत्मा ही है—दूसरे आत्मा में इस प्रकार ज्ञान और भाषा का डाल दिया जाना कोई ऐसी बात नहीं है जो असम्भव हो। योग-सिद्धि के द्वारा अब भी ऐसा किया जा सकता है। मैस्मरिज़्म (Mesmerism) को जो कि एक प्रकार की योग-सिद्धि ही है, जानने वाले लोग आज भी ऐसा कर लेते हैं। एक मैस्मरिज़्म जानने वाला पुरुष दूसरे व्यक्ति पर मैस्मरिज़्म कर के स्वयं बिना बोले ही, उस से जो भाषा चाहे बुलवा सकता है। यह व्यक्ति चाहे उस भाषा को बिलकुल भी न जानता हो। इस प्रकार की क्रियाओं में मैस्मरिज़्म करने वाला पुरुष अपनी भाषा को ही दूसरे व्यक्ति के मन में डाल देता है। मैस्मरिज़्म करने वाला पुरुष अंग्रेज़ी न जानने वाले से अंग्रेज़ी बुलवा सकता है और जर्मन न जानने वाले से जर्मन बुलवा सकता है। जो भी भाषा मैस्मरिज़्म करने वाला पुरुष जानता है उस भाषा को वह उसे न जानने वाले व्यक्ति से बुलवा सकता है। जब एक साधारण आदमी मैस्मरिज़्म की क्रिया सीख कर उस के द्वारा दूसरे व्यक्ति के मन में अपनी भाषा और ज्ञान डाल सकता है तो परमात्मा ऐसा क्यों नहीं कर सकते? वे तो बड़ी आसानी से ऐसा कर सकते हैं। सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने भी आदिम ऋषियों के मन में इसी प्रकार वेद के ज्ञान और वेद की भाषा को डाल दिया था और वे इस प्रकार वेद को समझने लगे थे और उस की भाषा को बोलने लगे थे। इस भांति अपना ज्ञान

१. मैस्मर (Mesmer) नामक विद्वान् द्वारा आविष्कृत, ध्यान की एकाग्रता द्वारा किसी व्यक्ति को प्रभावित करने का प्रकार।

सिखाने के लिये सर्व-व्यापक परमात्मा को हाथ, मुख, जिह्वा आदि की कोई आवश्यकता नहीं है।

जैसा हम पीछे संकेत कर आये हैं, परमात्मा ने आदिम ऋषियों को वेद के रूप में भाषा सिखा कर उस भाषा के शब्दों द्वारा सूचित होने वाले पदार्थों और उन के पारस्परिक सम्बन्धों का ज्ञान भी उन के मनों में दे दिया था। वेद के शब्द जिन-जिन पदार्थों को सूचित करते हैं उन सब पदार्थों के चित्र परमात्मा ने ऋषियों के मन में उत्पन्न कर दिये थे। उदाहरण के लिये अथर्व० ३. १७ सूक्त और ऋग्० १०. १०१. ३-६ मन्त्रों में खेती करने का वर्णन है। इन मन्त्रों में बैलों को हल में जोतने, हल चलाने, खेत में बीज बोने, खेत में पानी देने, पकी हुई खेती काटने आदि सब आवश्यक बातों का उल्लेख है और मनुष्यों को खेती करने का उपदेश दिया गया है। इस सूक्त का उपदेश करते हुये परमात्मा ने ऋषियों के मन में इस सूक्त के शब्दों से सूचित होने वाले सब पदार्थों के चित्र उत्पन्न कर दिये थे। हल और उस का जूआ, बैलों के गले में पड़ने वाले जोत, बैल और हल में जुती हुई बैलों की जोड़ी, हल चला कर तैयार किया हुआ खेत, खेत में बोया जाता हुआ बीज, खेत में उगी हुई खेती, पानी से सींची हुई खेती, खेत में पकी खड़ी हुई खेती, दरांती, दरांती से काटी जाती हुई खेती, कटी हुई खेती को बैलों से गाहना और भूसे को छाज में डाल कर हवा में उड़ाना आदि सब चीज़ों के चित्र परमात्मा ने ऋषियों के मन में उत्पन्न कर दिये थे। अपने मन के इन चित्रों के आधार पर उन्होंने खेती के लिये आवश्यक सब सामग्री बना ली और एकत्र कर ली और वे खेती करने लगे। जिस प्रकार एक शिल्पी या इंजिनीयर पहले अपने मन में किसी मकान या पुल आदि का एक चित्र बना लेता है और फिर अपने मन के उस चित्र के आधार पर वैसे ही मकान या पुल की रचना कर लेता है, उसी प्रकार वेद के शब्दों से सूचित होने वाले विभिन्न पदार्थों के परमात्मा द्वारा अपने मन में उत्पन्न किये गये चित्रों के आधार पर आदि-सृष्टि के ऋषियों ने उन-उन पदार्थों की रचना करली। आदिम ऋषियों ने फिर यह सब कुछ दूसरे लोगों को सिखा दिया। और इस प्रकार एक-दूसरे से सीखने की परम्परा चल पड़ी। इस प्रकार परमात्मा द्वारा आरंभ में ज्ञान का प्रवाह चला दिया जाने पर, मनुष्यों की बुद्धि और विचार-शक्ति खुल जाने के अनन्तर, मनुष्य अपने नये अनुभव और ज्ञान के आधार पर नये-नये पदार्थ भी बनाने लग पड़े। पर मनुष्यों को इस सब के योग्य बनाया परम गुरु परमात्मा ने ही, सृष्टि के आरम्भ के लोगों को वेद का ज्ञान और वेद की भाषा सिखा कर।

६

ईश्वरीय-ज्ञान की कसौटी

ईश्वरीय-ज्ञान अथवा इलहाम के विषय पर विचार करते हुए एक प्रश्न और सामने आता है। वह प्रश्न यह है कि भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले लोग अपनी-अपनी मान्य धर्म-पुस्तकों को ईश्वरीय-ज्ञान बताते हैं, ऐसी अवस्था में किस को ईश्वरीय-ज्ञान माना जाये और किस को नहीं ? इस का उत्तर यह है कि किसी भी पुस्तक को उस के अनुयायियों के दावे-मात्र से ईश्वरीय-ज्ञान नहीं माना जा सकता। हमें उस के दावे की परीक्षा करनी होगी। परीक्षा की कसौटी पर जो ग्रंथ सही उतरे उसी को हमें ईश्वरीय-ज्ञान मानना चाहिये, अन्यों को नहीं। ईश्वरीय-ज्ञान को परखने की कई कसौटियें हैं। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में पंच-परीक्षाओं का वर्णन किया है जिन से आर्ष-ज्ञान को परखा जा सकता है, जिन से यह जाना जा सकता है कि कौन-सी पुस्तक ऋषिकृत है और कौन-सी नहीं। ऋषि का अर्थ परमात्मा भी होता है। हम पंच-परीक्षाओं की कसौटी पर परख कर यह भी जान सकते हैं कि कौन-सा ग्रंथ परमेश्वर-रूप ऋषि का है और कौन सा नहीं। वे पंच-परीक्षायें ये हैं---(१) ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकूल होना, (२) सृष्टि-क्रम के अनुकूल होना, (३) आप्त पुरुषों की अनुकूलता, (४) आत्मा की पवित्रता, और (५) प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, संभव और अभाव, ये जो आठ प्रमाण दर्शनशास्त्र में सत्य के निर्णायक कहे गये हैं इन की अनुकूलता। ऋषि दयानन्द द्वारा प्रदर्शित इन पंच-परीक्षाओं द्वारा यह अनायास जाना जा सकता है कि कौन-सा ग्रंथ ईश्वरीय-ज्ञान है और कौन-सा नहीं।

ईश्वरीय-ज्ञान सृष्टि के आरम्भ में आना चाहिये

परमेश्वर सब मनुष्यों के माता-पिता हैं। वे सभी मनुष्यों का कल्याण चाहते हैं। अतः परमेश्वर द्वारा जो ज्ञान दिया जायेगा वह सृष्टि के आदि में दिया जायेगा। जिस से सृष्टि के आदि के लोग भी लाभ उठा सकें और उन के पीछे आने वाले अन्य लोग भी लाभ उठा सकें। इस कसौटी पर कसने पर वेद ही ईश्वरीय-ज्ञान ठहरता है। क्योंकि वेद ही सृष्टि के आरम्भ में दिया गया है। अन्य कोई भी धर्म-ग्रंथ सृष्टि के आरम्भ में प्रकट नहीं हुआ। कुरान को बने प्रायः १४०० वर्ष हुए हैं। बाइबल के ईसामसीह का यह १९५७ वां वर्ष चल रहा है और ईसाइयों के हजरत आदम को हुए भी प्रायः ६०००

वर्ष हुए हैं। इस प्रकार बाइबिल अधिक-से-अधिक ६ हज़ार वर्ष पुरानी मानी जा सकती है और उस का अत्यधिक प्रामाणिक भाग नवीन खण्ड (न्यू टैस्टामेंट = New Testament) तो १९५७ वर्ष से पुराना नहीं है। ज़िन्दावस्ता को पाश्चात्य विद्वान् लगभग ४००० वर्ष पुराना मानते हैं। इसी प्रकार अन्य धर्मग्रन्थ भी बहुत इधर के समय के हैं। एक वेद ही ऐसा ग्रन्थ है जो सृष्टि के आरम्भ का है।

इलहामी पुस्तकें सर्वाङ्ग सत्य के प्रकाश का दावा करती हैं। ऐसी अवस्था में किसी भी इलहामी पुस्तक का सृष्टि के आरम्भ में प्रकट होना आवश्यक है। सत्य के सर्वाङ्ग पूर्ण प्रकाश की आवश्यकता सब से अधिक उस समय है जब कि पहले-पहल मनुष्य जाति की सृष्टि हुई। उस समय का मनुष्य बिना सिखाये कुछ भी नहीं सीख सकता था। जो पुस्तक सर्वाङ्ग सत्य के प्रकाश का दावा करती है उसे सृष्टि के शुरू में होना चाहिये। नहीं तो सृष्टि के शुरू में सर्वाङ्ग सत्य का परिज्ञान न होने कारण यदि सृष्टि-काल के मनुष्य कुछ अधर्माचरण कर बैठें——जो कि वे अवश्य करेंगे क्योंकि उन्हें धर्म का पूरा ज्ञान नहीं होगा——तो उसका परिणाम उन्हें नहीं भुगतना चाहिये। इस अधर्माचरण में उन का कोई दोष नहीं है। किसी का दोष है तो ईश्वर का। क्योंकि उस ने उन्हें धर्म का पूरा ज्ञान नहीं दिया। वेद के अतिरिक्त अन्य कोई भी पुस्तक सृष्टि के शुरू में नहीं हुई। यदि ये धर्म-पुस्तकें सर्वाङ्ग सत्य से युक्त होतीं और ईश्वरीय होतीं तो इन्हें सृष्टि के आरम्भ में होना चाहिये था। केवल वेद ही एक ऐसा धर्म-पुस्तक है जो सृष्टि के आरम्भ में आया है। अतः केवल वेद को ही ईश्वरीय ज्ञान या इलहाम माना जा सकता है।

ईश्वरीय-ज्ञान के ग्रन्थ में किसी देश का भूगोल और इतिहास नहीं होना चाहिये

ईश्वर का ज्ञान मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिए होता है। इसलिये ईश्वरीय ज्ञान कही जाने वाली पुस्तक में किसी देश-विशेष के इतिहास अथवा भूगोल का वर्णन नहीं हो सकता। बाइबल में पैलस्टाइन के यहूदियों का इतिहास अधिक है। और उस में पैलस्टाइन के अनेक स्थानों का वर्णन है। इस से यही परिणाम निकाला जा सकता है कि पैलस्टाइन के यहूदियों के नेताओं ने वहां के लोगों के लाभ के लिये बाइबल को लिखा है। इसी प्रकार कुरान में अरब देश के दृश्यों के वर्णन मिलते हैं और उस में मुहम्मद साहब के जीवन-वृत्तान्त भी बहुत मिलते हैं। इस से भी यही परिणाम निकलता है कि अरब देश के लोगों के लाभ के लिए मुहम्मद साहब ने कुरान की रचना की है।

वेद में किसी देश के भूगोल और किसी जाति अथवा व्यक्ति-विशेष के इतिहास का उल्लेख नहीं है। वेद किसी देश-विशेष और जाति-विशेष के लाभ के लिये नहीं लिखा गया है। वेद का प्रकाश तो मनुष्य-मात्र के लाभ के लिये किया गया है। इसी लिये वेद में किसी देश का भूगोल और किसी व्यक्ति तथा जाति का इतिहास वर्णित नहीं मिलता। अतः केवल वेद को ही ईश्वरीय ज्ञान अथवा इलहाम माना जा सकता है, अन्य धर्म-ग्रन्थों को नहीं। योरोपीयन विद्वान् और उनके अनुयायी कुछ भारतीय विद्वान् जो वेद से इतिहास निकालते हैं, वह वेद की भाषा और उसकी परिभाषाओं के ठीक से न समझने के कारण है। प्राचीन भारतीय परम्परा वेद को विशुद्ध ईश्वरीय ज्ञान ही मानती रही है और उसमें किसी प्रकार का इतिहास नहीं मानती रही है[1]।

ईश्वरीय ज्ञान किसी देश-विशेष की भाषा में नहीं आना चाहिये

क्योंकि ईश्वरीय ज्ञान मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिये दिया जाता है इस लिये उसका प्रकाश किसी देश-विशेष की भाषा में नहीं होना चाहिये। किसी देश-विशेष की भाषा में होने से उस से उसी देश के लोग लाभ उठा सकेंगे, अन्य देशों के लोग नहीं। कुरान अरबी भाषा में है, बाइबल इबरानी भाषा में और जिन्दावस्ता पहलवी भाषा में है। वेद किसी देश-विशेष की भाषा में नहीं है। वेद वैदिक भाषा में है। सृष्टि के आरम्भ में जब वेद का उपदेश दिया गया तो वैदिक भाषा कहीं भी नहीं बोली जाती थी। सृष्टि के आरम्भ के मनुष्य कोई भी भाषा नहीं जानते थे। परमात्मा ने ही उन्हें वेद का उपदेश देकर वैदिक भाषा भी सिखाई, कालक्रम में जिसके अपभ्रंश होते होते आज संसार में इतनी भाषायें फैल गई हैं। वैदिक भाषा यौगिक भाषा है। उसके सीखने में आज भी सभी देशों के लोगों को प्रायः एक-समान प्रयत्न करना पड़ता है। वेद का सृष्टि के आदि-काल में वैदिक भाषा में, जो कि किसी भी देश की भाषा नहीं थी, प्रकाशित होना भी यह सिद्ध करता है कि केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है जो कि मनुष्य-मात्र के लिये दिया गया है।

ईश्वरीय ज्ञान को बार-बार बदलने की आवश्यकता नहीं होनी चाहिये

परमात्मा पूर्ण और सर्वज्ञ हैं। उनके किसी काम में त्रुटि और न्यूनता नहीं हो सकती। वे अपनी सृष्टि में जो भी रचना करते हैं भली-भांति विचार कर करते हैं और फिर उसे सर्वांश में या एकांश में बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परमात्मा ने सृष्टि के आरंभ में प्राणिमात्र के कल्याण के लिये चन्द्र

१. इस सम्बन्ध में हमने अपनी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" की भूमिका में बहुत विस्तार से विचार किया है।

और सूर्य आदि पदार्थों की रचना की। परमात्मा के रचे ये पदार्थ त्रुटिरहित और पूर्ण हैं। सृष्टि-काल में इन्हें जैसा बनाया गया था ये वैसे ही चले आ रहे हैं। इन्हें बदलने की आवश्यकता नहीं पड़ी। परमात्मा का ज्ञान भी मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिये होता है। इस लिये वह सृष्टि के आरम्भ में दिया जाना चाहिये और एक बार में ही पूर्ण रूप से दे दिया जाना चाहिये। उसे बार-बार बदलने की आवश्यकता नहीं पड़नी चाहिये। नहीं तो जिन लोगों को बदलने से पहले का अधूरा ज्ञान परमात्मा ने दिया उन के साथ अन्याय होगा। बाइबल में कई स्थानों पर ऐसा वर्णन आता है कि परमेश्वर ने अपनी भूल के लिये पश्चात्ताप किया। बाइबल के भिन्न-भिन्न भागों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वे भिन्न-भिन्न समयों में आसमान से उतरे। इसी प्रकार मुसलमान मानते हैं कि परमेश्वर ने पहले क्रमशः जबूर, तौरेत और इंजील के ज्ञान प्रकाशित किये, फिर उन सब को क्रमशः उत्तरोत्तर निषिद्ध करता रहा। फिर कुरान का प्रकाश किया। इस सब में यही प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या परमात्मा पूर्ण और सर्वज्ञ नहीं है जो उस ने शुरू में ही पूर्ण और सत्य ज्ञान नहीं दे दिया? परमात्मा को अपूर्ण और अज्ञानी मनुष्यों की भांति अपनी बात को बार-बार बदलने की आवश्यकता क्यों होती है? नहीं, परमात्मा अपूर्ण और अज्ञानी नहीं है। वह पूर्ण और सर्वज्ञ है। उसे अपने उपदेश को बार-बार बदलने की आवश्यकता नहीं है। उस ने जैसे चन्द्र और सूर्य आदि पूर्ण बनाये हैं वैसे ही उसने अपना उपदेश भी पूर्ण ही दिया है। सृष्टि के आदि में दिया गया परमात्मा का वह पूर्ण उपदेश वेद है। वेद जैसे सृष्टि के आदि में थे वैसे ही अब भी हैं। जैसे परमात्मा अनादि हैं वैसे ही उन का ज्ञान वेद भी अनादि है। वेद के किसी भी सिद्धान्त को बदलने की आवश्यकता परमात्मा को कभी अनुभव नहीं हुई। अतः केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

ईश्वरीय ज्ञान सृष्टि-क्रम के विपरीत नहीं होना चाहिये

परमात्मा इस सारी प्राकृतिक सृष्टि के कर्ता हैं। परमात्मा की इस सृष्टि में सर्वत्र एक क्रम पाया जाता है, सर्वत्र एक व्यवस्था और नियम काम करता हुआ पाया जाता है। अतः परमात्मा द्वारा दिया हुआ ज्ञान उन नियमों के विपरीत नहीं हो सकता जो नियम परमात्मा की सृष्टि में चल रहे हैं। जो पुस्तक अपने को ईश्वरीय ज्ञान कहती है उस में भी सृष्टि-क्रम के विपरीत, सृष्टि में चल रहे नियमों के विपरीत, कोई बात नहीं पाई जानी चाहिये। ईश्वरीय ज्ञान माने जाने वाले बाइबल आदि ग्रन्थों में सृष्टि-क्रम के विपरीत, बातें पाई जाती हैं। बाइबल में लिखा है कि ईसामसीह कुमारी मरियम के पेट

से बिना किसी पुरुष के संयोग के ही उत्पन्न हो गये थे। ईसामसीह ने मुर्दों को जीवित कर दिया था और बिना ओषधि के ही अन्धों को आंखें दे दी थीं। कुरान में लिखा है कि कि सूर्य कीचड़ के चश्मे में डूबता था, पहाड़ बादलों की भांति उड़ते थे, मूसा ने एक पत्थर पर डण्डा मारा और उस पत्थर से बारह चश्मे बह निकले। पुराणों में लिला है कि अगस्त्य मुनि ने समुद्र को पी लिया, एक दैत्य सारी पृथिवी को चटाई की तरह ले कर उसे सिरहाने रख कर सो गया। इन पुस्तकों की ये सब बातें सृष्टि-क्रम के विपरीत हैं। इन पुस्तकों में इसी प्रकार की और भी न जाने कितनी बातें सृष्टि-क्रम के विपरीत भरी हुई हैं। इस लिये इस प्रकार की पुस्तकों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं माना जा सकता। ईश्वर की सृष्टि में और ईश्वर के ज्ञान में परस्पर विरोध नहीं होना चाहिये। वेदों में सृष्टि-क्रम के, सृष्टि की व्यवस्था और नियमों के, विरुद्ध कोई भी बात नहीं है। इस लिये केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

ईश्वरीय ज्ञान में विविध विद्या-विज्ञानों का वर्णन होना चाहिये

मनुष्यों के कल्याण के लिये परमात्मा ने जिस ज्ञान का उपदेश दिया हो उस में मनुष्योपयोगी भांति-भांति की विद्यायें होनी चाहियें। उसे विद्याओं का भण्डार होना चाहिये। यह आवश्यक नहीं कि उस में सब विद्यायें विस्तार से बतलाई गई हों। सब विद्याओं के मौलिक सिद्धान्त यदि उस में वर्णित कर दिये गये हों तो वह मनुष्यों के कल्याण के लिये पर्याप्त हैं। जिस प्रकार सूर्य सब प्रकार के भौतिक प्रकाश का कोष और मूल है उसी प्रकार ईश्वरीय ज्ञान भी विद्यारूपी प्रकाश का मूल है। इस कसौटी पर कसने पर बाइबल आदि ग्रन्थ ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध नहीं होते। इन पुस्तकों में विभिन्न विद्याओं को मूल सिद्धान्तों की विद्यामानता की तो बात ही दूर रही, प्रत्युत इन में अनेक ऐसी बातें लिखी हैं जो विद्या-विज्ञानों के सर्वथा विरुद्ध हैं। बाइबल और कुरान में लिखा है कि भूमि चौड़ी है, फ़रिश्ते आसमान पर रहते हैं, स्वर्ग में दूध और शहद की नदियें बहती हैं। इन में इसी प्रकार की और भी अनेक बातें विद्या-विज्ञान के विरुद्ध लिखी हैं। बाइबल के तो विद्या-विज्ञान के विरुद्ध होने का यह भी एक प्रबल प्रमाण है कि योरोप में ईसाई पादरी और आचार्य सदा वैज्ञानिकों पर अत्याचार करते और करवाते रहे हैं। उदाहरण के लिये प्रसिद्ध विद्वान् गैलीलियो इसी लिये जेल में डाल दिया गया था कि वह बाइबल की शिक्षा के विरुद्ध इस सत्य सिद्धान्त का प्रचार किया करता था कि पृथिवी सूर्य के चारों ओर घूमती है। देवी हियोफिया, पादरी सिरिल की आज्ञा से, इसलिये नंगी की गई और बाज़ार में जान से मार दी गई क्योंकि

वह रेखागणित पढ़ाया करती थी और पादरी कहते थे कि रेखागणित की विद्या असत्य है क्योंकि बाइबल में इस का उल्लेख नहीं है। पुराणों में भी इसी प्रकार अनेक असंभव और विद्या-विज्ञान के विरुद्ध बातें भरी हुई हैं। वेदों में विज्ञान-विरुद्ध एक भी बात नहीं है। प्रत्युत वेदों में ओषधि-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, भोजन-विज्ञान, राजनीति-विज्ञान, समाज-विज्ञान, आचार-शास्त्र, अध्यात्म-शास्त्र, भौतिक-विज्ञान, सृष्टि-विज्ञान, आदि अनेक विद्या-विज्ञानों के मौलिक तत्त्वों का प्रतिपादन किया गया है। आर्यों के सभी दर्शन-शास्त्र और आयुर्वेद आदि सभी वैज्ञानिक शास्त्र वेदों को ही अपना आधार मानते हैं[1]। अतः केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है।

ईश्वरीय-ज्ञान ईश्वर के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल होना चाहिये

ईश्वरीय ज्ञान में परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के विपरीत कोई बात नहीं पाई जानी चाहिये। परमात्मा के सत्यस्वरूप, न्यायकारी, दयालु, पवित्र, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त-स्वभाव, नियन्ता, सर्वज्ञ आदि नाम उस के गुण, कर्म और स्वभाव का परिचय देते हैं। ईश्वरीय ज्ञान में परमात्मा के इस प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव के विपरीत बातें नहीं पाई जानी चाहिये। बाइबल, कुरान और पुराण आदि ग्रन्थों में ऐसी अनेक बातें लिखी हैं जो परमात्मा के इस प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव के साथ मेल नहीं खातीं। वे बातें परमात्मा के इस प्रकार के गुण, कर्म और स्वभाव के सर्वथा विपरीत हैं। अतः इन पुस्तकों को ईश्वरीय ज्ञान नहीं माना जा सकता। वेदों में कोई भी बात परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के विपरीत नहीं है। वेदों में वर्णित बातें परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव के अनुकूल हैं। इस लिये केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान हैं।

७

सन्तों और योगी-महात्माओं को भी कसौटी पर कसना होगा

हम ने ऊपर ईश्वरीय ज्ञान की तार्किक संभावना के सम्बन्ध में विचार करते हुए लिखा है कि प्रायः सभी देशों और सभी जातियों में बीच-बीच में ऐसे साधु-सन्त और योगी-महात्मा उत्पन्न होते रहे हैं जिन्हें ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा ऊंची सच्चाइयों का ज्ञान प्राप्त होता रहा है। ऐसे लोगों की कौन सी बात ईश्वरीय प्रेरणा की है और कौन सी नहीं, इस का निश्चय भी ऋषि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट पंच-परीक्षाओं द्वारा ही होगा। इन लोगों की भी जो

१. इस सम्बन्ध में अधिक विस्तृत जानकारी के लिये हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" का भूमिका-भाग देखिये।

बातें इन पंच-परीक्षाओं की कसौटी पर खरी नहीं उतरेगीं उन्हें दैवी प्रेरणा नही माना जा सकेगा। आंख हमें पदार्थ का यथार्थ ज्ञान देती है। परन्तु वही कई बार हमें मिथ्या ज्ञान भी दे बैठती है जिसे हम सत्य समझ रहे होते हैं। परन्तु परीक्षा करने पर पता लगता है कि यह सत्य समझा जा रहा ज्ञान तो वास्तव में मिथ्या था। हम भ्रान्ति से उसे सत्य समझ रहे थे। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को दैवी प्रेरणा होती है वह भी कई वार ऐसी बातों को जो दैवी प्रेरणा नहीं होती हैं प्रत्युत उसी की भूल करने वाली अपनी सामान्य बुद्धि की उपज होती हैं, दैवी प्रेरणा समझ बैठता है। वहां परीक्षा कर के देखना होगा कि उस की सभी बातें दैवी प्रेरणा की हैं या नहीं। साथ ही हमें यह भी देखना होगा कि दैवी प्रेरणा का दावा करने वाले व्यक्ति का सामान्य चरित्र इतना पवित्र और ऊंचा है कि नहीं जिस में दैवी प्रेरणा मिलने की संभावना हो सके। किसी व्यक्ति के दावेमात्र से यह नहीं माना जा सकता कि उसे वास्तव में दैवी प्रेरणा होती है। पंच-परीक्षाओं की कसौटी द्वारा उस के दावे की जांच करनी होगी। अनेक पाखण्डी लोग दैवी प्रेरणा का दावा कर के भोली-भाली, श्रद्धालु और विश्वासी जनता को ठगते भी रहते हैं। हमें परीक्षा की कसौटी पर कस कर देखना होगा कि उन की बात ठीक है अथवा गलत।

सन्तों की और वेद की बात में विरोध नहीं होना चाहिये

यहां एक शंका का निराकरण कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। हम ने कहा है कि सभी देशों और सभी जातियों में ऐसे साधु-महात्मा होते रहे हैं और हो सकते हैं जिन्हें दैवी प्रेरणा द्वारा ऊंची त्रैकालिक सार्वभौम सच्चाइयों का बोध होता रहा है और हो सकता है। हमारी इस बात को पढ़ कर अनेक श्रद्धालु वैदिक-धर्मियों के मन में यह शंका उठ सकती है कि अगर सभी समयों और सभी बोली बोलने वाली जातियों में ऐसे पहुंचे हुए महात्मा हो सकते हैं जिन्हें दैवी प्रेरणा या इलहाम हो सकता है तो फिर वेद की क्या विशेषता और महिमा रही ? इस सम्बन्ध में हमें अपनी स्थिति को स्पष्ट कर देना उचित है। हमारा यह मन्तव्य अवश्य है कि किसी भी समय और किसी भी जाति में ऐसे पहुंचे हुए महात्मा और सन्त हो सकते हैं जिन्हें दैवीप्रेरणा या इलहाम होता हो। हमारा यह मन्तव्य कोई अपना नया मन्तव्य नहीं है। सभी वैदिकधर्मी यह मानते हैं कि योगी-महात्मा लोग समाधि की अवस्था में परमात्मा के सम्पर्क में बैठ कर परमात्मा से ज्ञान और प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। स्वयं ऋषि दयानन्द ने भी लिखा है कि योगी लोग अब

भी समाधि में एकाग्रचित्त हो कर वेद-मन्त्रों के अर्थ और उन में वर्णित सच्चाइयों को परमात्मा की प्रेरणा द्वारा समझ सकते हैं। इस प्रकार बीच-बीच में भी पहुंचे हुए साधु-महात्माओं को ईश्वरीय प्रेरणा से ज्ञान मिल सकने की बात केवल हमारी ही नहीं है, इसे सभी मानते हैं। परन्तु यहां एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये। वह यह कि सन्तों को दैवी-प्रेरणा द्वारा प्राप्त होने वाले ज्ञान में और वेदों के ज्ञान में विरोध नहीं होना चाहिये। वेद सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिये परमात्मा द्वारा दिया हुआ सर्वाङ्ग पूर्ण ज्ञान है। वेद का ज्ञान और सन्तों का दैवी-प्रेरणा का ज्ञान दोनों ही ईश्वरीय प्रेरणा हैं। पूर्ण और सत्य-ज्ञानी सर्वज्ञ परमात्मा की प्रेरणा से मिलने वाले ज्ञानों में परस्पर विरोध संभव नहीं हो सकता। वेद में कही गई सच्चाई का प्रकाश ही दैवी प्रेरणा द्वारा इन सन्तों के हृदयों में होगा। वेद की बात को ही प्रकारान्तर से ये पहुंचे हुए सन्त-महात्मा भी कह रहे होंगे। फिर एक बात और भी ध्यान में रखने की है। संसार के सभी पहुंचे हुए सन्तो के, जिन्हें कभी दैवी प्रेरणा होती रही है, जीवनों को देख जाइये। आप देखेंगे कि उन पर सत्य के एक या कुछ अंगों का ही प्रकाश होता रहा है। वे सत्य के एक-दो पहलुओं पर ही विशेष बल देते रहे हैं। सत्य का सर्वाङ्ग पूर्ण चित्र उनके मनों में प्रकाशित नहीं होता रहा है। और, अगर इतिहास की परम्परा के आधार पर हमें भविष्य के सम्बन्ध में कोई हलका-सा अनुमान करना हो तो हम समझ सकते हैं कि भविष्य में भी ऐसे सन्तों पर संभवतः सत्य के एक या कुछ अंगों का प्रकाश ही दैवी प्रेरणा द्वारा संभव हो सकेगा। दूसरी ओर वेद में सत्य का सर्वाङ्ग पूर्ण प्रकाश हुआ है। और वेद का वह प्रकाश सृष्टि के आरम्भ में दिया गया है। वेद के उस प्रकाश के विना मानव-जाति कभी भी अपने शैशव-काल की मोह-निद्रा से ऊपर नहीं उठ सकती थी। उस प्रकाश के विना मानव की पूर्ण चेतना जागृत नहीं हो सकती थी और सर्वतोमुखी उन्नति का सूत्र उसके हाथ में नहीं आ सकता था। इस प्रकार वेद का अपना विशिष्ट महत्त्व तो अक्षुण्ण ही रहता है।

८

ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त कलह का कारण नहीं है

ईश्वरीय ज्ञान या इलहाम के सम्बन्ध में विचार करते हुए कुछ लोग यह भी कह दिया करते हैं कि ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जो कि कलह और झगड़ों की जड़ है। सब धर्मों वाले अपनी-अपनी धर्म-पुस्तक

को इलहामी मानते हैं। दूसरों की धर्म-पुस्तकों को इलहामी नहीं मानते। प्रत्येक धर्म वाला दूसरे की धर्म-पुस्तक को गलत मानता है। और इस प्रकार दूसरे धर्मवालों को गलत राह पर चलने वाले मान कर उन्हें धरती पर से ही मिटा देना चाहता है। मुसलमान लोग कुरान को ही इलहामी किताब मानते हैं। और इसलाम को सच्चा धर्म मानते हैं। बाकी सब धर्मों वालों को वे काफिर समझते हैं और उन्हें धरती पर जीने का अधिकार नहीं है ऐसा मानते हैं। हिन्दु लोग वेदों को ही ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं और हिन्दु धर्म को ही सच्चा धर्म समझते हैं। दूसरे धर्मों वालों को वे म्लेच्छ कहते हैं। मुसलमानों ने केवल कुरान को ही इलहामी पुस्तक और केवल इसलाम को ही सच्चा धर्म मानने के कारण विधर्मियों पर जो अत्याचार किये हैं उन से इतिहास भरा पड़ा है। हिन्दु लोग इस इलहाम के सिद्धान्त के कारण ही, वेदों की बात को सत्य समझ कर, दूसरे लोगों को म्लेच्छ कहते रहे हैं और उन से घृणा करते रहे हैं। इतना ही नहीं। इसी इलहाम या ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धान्त के कारण ही वेद-शास्त्र की बातों को ठीक समझ कर, हिन्दु लोग अपने ही धर्म के अनुयायी अछूत कहे जाने वाले लोगों पर जो अन्याय और अत्याचार करते रहे हैं उन्हें कौन नहीं जानता ? इस इलहाम के सिद्धान्त के कारण ही तो हिन्दु और मुसलमानों के झगड़े होते रहते हैं। अतः इलहाम का सिद्धान्त झगड़ों की जड़ है और इसका परित्याग कर दिया जाना चाहिये। वास्तव में कोई भी पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान या इलहामी नहीं है।

इस प्रकार का तर्क करने वाले लोग भूल करते हैं। इलहाम के सिद्धान्त का दार्शनिक तर्क के रूप में परित्याग नहीं किया जा सकता। जैसा हम ऊपर के पृष्ठों में दिखा चुके हैं ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त तर्क-सम्मत है। भाषा की उत्पत्ति और ज्ञान के विकास-विषयक कई ऐसी गुत्थियें हैं जिन का ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धान्त को स्वीकार किये बिना कोई समाधान नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त हमें मानना ही पड़ता है। ईश्वरीय ज्ञान का सिद्धान्त अपने आप में कलह और झगड़े कराने वाली वस्तु नहीं है। जो ईश्वरीय ज्ञान नहीं है जब उसे ईश्वरीय-ज्ञान समझ लिया जाता है, झगड़े तो तब होते हैं। सच्चा ईश्वरीय ज्ञान कभी झगड़े नहीं करा सकता। सत्य-स्वरूप, न्यायकारी, दयालु, पवित्र, सहिष्णु, शुद्ध, मुक्त और शान्तिमय स्वभाव वाले परमात्मा का ज्ञान कभी झगड़े नहीं करा सकता। जो किताब झगड़े सिखाती है और झगड़े कराती है वह ईश्वरीय ज्ञान नहीं हो सकती। इस लिये हमें ऊपर कही गई कसौटियों के आधार पर परीक्षा कर के सच्चे ईश्वरीय ज्ञान और ईश्वरीय ज्ञान का दम्भ

करने वाले ग्रन्थों में भेद करना होगा। ईश्वरीय ज्ञान के सिद्धान्त को मत कोसिये। ईश्वरीय ज्ञान का झूठा दावा करने वालों को कोसिये।

वेद प्राणी-मात्र से प्रेम करना सिखाता है

हम वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं। और हम वेद के सम्बन्ध में निःसंकोच और निर्भय हो कर कह सकते हैं कि वेद किसी के साथ भी घृणा करना और लड़ना-झगड़ना नहीं सिखाता। वेदों में अछूतों आदि के साथ घृणा करने और उन पर अत्याचार करने की बात कहीं भी नहीं लिखी। केवल विचार-भेद के कारण दूसरों को म्लेच्छ या काफ़िर समझने की बात भी वेद में कहीं नहीं लिखी। विचार-भेद के कारण किसी को मार दिया जाना चाहिये ऐसी कलुषित बात भी वेद में कहीं नहीं लिखी। किसी को अछूत समझना और उस से घृणा करना इस प्रकार की बातें कहीं-कहीं हिन्दुओं के स्मृति और सूत्र-ग्रन्थ नामक साहित्य में पाई जाती हैं। इस प्रकार के ग्रन्थों को कोई भी ईश्वरीय-ज्ञान या इलहामी नहीं कहता। ये ग्रन्थ स्पष्ट रूप में मध्यकालीन पण्डितों के बनाये हुए हैं। ये पुस्तक ईश्वरीय ज्ञान नहीं हैं। ईश्वरीय ज्ञान तो हिन्दु लोग केवल वेद को ही मानते हैं। और वेद में इस प्रकार की घृणा सिखाने वाली बातें कहीं भी नहीं लिखीं। वेद का पाठ करने वाला तो प्रति-दिन अपने परमेश्वर से प्रार्थना करता है कि "हे प्रभो! मुझे ब्राह्मणों का प्यारा बना दे, क्षत्रियों का प्यारा बना दे, आंख से देखने वाले सभी प्राणियों का प्यारा बना दे, शूद्रों और वैश्यों का प्यारा बना दे[1]।" एक दूसरे स्थान पर वेद में भगवान् से प्रार्थना है—"विघ्न और बाधाओं का विदारण करने वाले हे परमात्मन्! मुझे दृढ़ बनाइये, सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें, मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं, हम सब परस्पर एक-दूसरे को मित्र की आंख से देखें[2]।" अपने भगवान् से प्रतिदिन ऐसी प्रार्थना करने वाले वैदिक-धर्मी लोग किसी भी व्यक्ति से घृणा नहीं कर सकते। ऐसी प्रार्थना करने वाले वैदिक-धर्मी ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग शूद्रों को अछूत कह कर उन से घृणा और उन पर अत्याचार नहीं कर सकते। और ऐसे वैदिक-धर्मी शूद्र भी ब्राह्मणों आदि के साथ किसी प्रकार का घृणा और द्वेष का भाव नहीं रख सकते।

---

१. प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये॥ अथर्व. १६. ६२. १।

२. दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥
यजुः. ३६. १८।

वैदिक धर्म से भिन्न धर्मों का अवलम्बन करने वाले लोगों के साथ वैदिक-धर्मी लोगों का कैसा व्यवहार होना चाहिये इस सम्बन्ध में भी वेद की स्पष्ट आज्ञा है—"धरती पर रहने वाले भिन्न-भिन्न भाषाओं को बोलने वाले और भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों को भी आपस में इस प्रकार प्रेम से मिल कर रहना चाहिये जिस प्रकार एक घर में रहने वाले कुटुम्बी लोग रहा करते हैं[1]।" वेद की इस आज्ञा को मानने वाला वैदिक-धर्मी केवल विचार-भेद के कारण किसी के प्रति घृणा, लड़ाई-झगड़े और अत्याचार का बरताव नहीं कर सकता। यदि कोई ऐसा करता है तो वह वैदिक-धर्मी नहीं है।

हमें हमारे विचारों को न मानने वालों का सिर और खून लेने का कोई अधिकार नहीं है। हमें केवल इतना ही अधिकार है कि हम अपने से भिन्न विचार रखने वालों को अपने विचारों की उपयोगिता और युक्ति-युक्तता प्रेम-पूर्वक समझा दें। इस से आगे बढ़ने का हमें अधिकार नहीं है। सच्चा इलहाम यही सिखाता है। और वह सच्चा इलहाम कौन-सा है इस की परीक्षा उपर्युक्त कसौटियों की सहायता से कर लेनी चाहिये। जो इलहाम इस कसौटी पर सही न उतरे वह इलहाम ही नहीं है। उस का खुल कर विरोध कीजिये। खरे-खोटे का भेद न कर के सब को एक लाठी से क्यों हांका जाये? वेद परीक्षा की इस कसौटी पर कसा जा कर सही उतरता है। अतः वेद ही सच्चा ईश्वरीय ज्ञान है और उस का विरोध नहीं किया जा सकता।

इलहामों की अनेकता में एकता

आज जो इलहाम या ईश्वरीय ज्ञान होने का दावा कर के अनेक धर्म-ग्रन्थ हमारे सामने आ कर उपस्थित होते हैं उस से भी हमें विक्षुब्ध नहीं होना चाहिये। यह नहीं समझना चाहिये कि इलहामों की यह अनेकता अशान्ति और कलह का ही कारण बनी रहेगी। जैसा कि हम ने ऊपर दिखाया है वास्तविक इलहाम कभी एक-दूसरे के विरोधी नहीं हो सकते। उन में सत्य और धर्म के ही विभिन्न अङ्गों का काल-भेद से पुनः पुनः पोषण हुआ होता है। कलह का कारण वास्तव में वह चीज़ है जो इलहाम नहीं है पर इलहामों में इलहाम के नाम से घुस गई है। उस का उपर्युक्त कसौटी का प्रयोग कर के इलहामों से बहिष्कार कर दिया जाना चाहिये। तब जो इलहामों का रूप प्राप्त होगा वह परस्पर-विरोधी न होगा। उस में सत्य और धर्म का ही भाषान्तर और प्रका-

---

१. जनं बिभ्रती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्। अथर्व. १२. १. ४५।
यह मन्त्रखण्ड वेद के जिस सूक्त (अथर्व. १२. १) का है उस सारे सूक्त की विस्तृत व्याख्या हमारी पुस्तक "वेद का राष्ट्रिय गीत" में देखिये।

रान्तर से पोषण होगा। उस अवस्था में सभी इलहाम वास्तव में एक ही बात कह रहे होंगे। तब विभिन्न इलहामों के अनुयायी एक-दूसरे को अपना शत्रु समझ कर उनके रक्त के प्यासे न हो उठेंगे, प्रत्युत सब को प्रकारान्तर से अपनी ही बात कहते हुए देख कर हर्षित होंगे और एक-दूसरे को गले लगायेंगे। इलहाम के सिद्धान्त को न कोस कर, जो कि एक दार्शनिक सचाई है, इलहाम के क्षेत्र में परीक्षा और समालोचना का प्रवेश कराने की आवश्यकता है। सब विचारशील लोगों की शक्ति वास्तव में इस दिशा में लगनी चाहिये। आर्यसमाज का मनुष्य-जाति पर यह एक बहुत बड़ा उपकार है कि उस ने धर्म और इलहाम के क्षेत्र में परीक्षा की पद्धति चलाई है।

हम लोग वेद को इलहामी मानते हैं। हमारी सम्मति में वेद में वह ज्ञान और वह भाषा है जो सृष्टिकाल में मनुष्य को परमात्मा ने दी थी। इस ईश्वरीय ज्ञान में धर्म का सर्वाङ्ग-पूर्ण प्रकाश हुआ है। इस सर्वाङ्ग-पूर्ण धर्म को स्वीकार करने से मनुष्य-जाति का कल्याण और उद्धार हो जायेगा। लोग उसी प्रकार देवता-स्वरूप बन जायेंगे जैसे कि वे सृष्टिकाल में इस सर्वाङ्ग-पूर्ण धर्म का पालन करने से बनते थे। आर्यसमाज वेद में वर्णित इस सर्वाङ्ग-पूर्ण धर्म का संसार भर में प्रचार करने के लिये ही अपनी सारी शक्ति खर्च कर रहा है। ऐसा करते हुए हमें अन्य लोगों के अपने-अपने इलहामों के दावे सुन कर कोई दुःख नहीं होता, उलटा हर्ष होता है। क्योंकि हमारा विश्वास है कि वे इलहाम अगर वास्तव में इलहाम हैं तो उसी सच्चाई का वर्णन कर रहे होंगे जिस का हमारा इलहाम वेद करता है। हम सिर्फ उन लोगों से इतना चाहते हैं कि वे हमें अपने इलहामों की परीक्षा कर लेने दें और स्वयं हमारे इलहाम की परीक्षा कर लें। यह मांग करना प्रत्येक मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है। इस से किसी को रोका नहीं जाना चाहिये। अगर धर्मों और इलहामों वाले लोग हमारी इस मांग को स्वीकार कर लें तो धर्म और इलहाम के नाम पर कभी कलह और रक्तपात नहीं हो सकता।

मन्त्रानुक्रमणिका

मन्त्र	पृष्ठ
अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू	१७६,२६१
अङ्गादङ्गाद् वयमस्याः	१४
अजीजनो हि वरुण स्वधावन्	१९३
अदीनाः स्याम	१६१
अनमीवाः	४७
अनागो हत्या वै भीमा	४२
अन्तकाय गोघातं	४४
अन्तर्वान्	४६
अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं	१८
अपश्यं त्वा मनसा चेकितानं	१२
अपश्यं त्वा मनसा दीध्यानां	१२
अपूर्वेणेषिता वाचः	३३४
अबिभ्युषीः	४७
अभ्रातेव पुंस एति	२१
अमाजूरिव पित्रोः	२२
अमूर्या यन्ति योषितो	२१
अमोऽहमस्मि सा	१४
अयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः	४७
अश्वावन्तं रथिनं	२७
अश्विनास्तामुभा वरा	१३
असपत्ना सपत्नघ्नी	२४
अहं केतुरहम्	२४
अहं वदामि नेत्	२३
आ गावो अग्मन्नुत	३२
आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः	४६
आ त्वा वत्सो	३०
आद्य रायस्पोषम्	६
आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो	३१
आरे गोहा नृहा	४४
आ रोह सूर्ये	१४
आ हरामि गवां क्षीरम्	२६
इन्द्र, मरुत्, वरुण	४६
इन्द्रो यज्वने पृणते	३२
इमा नारीः	१४
इमे ये नार्वाङ्‌ न	१३४,२६७,३१४
इमं गोष्ठं पशवः	२६
इयं नारी पतिलोकं	१८
इयं समित्पृथिवि द्यौर्द्वितीयो	७,२६४
ईशानासः पितृवित्तस्य रायः	६०
ईशावास्यमिद ँ सर्वं	६५
इहैव स्तं मा	१५
उत त्वः पश्यन्न ददर्श	३१४
उदसौ सूर्यो अगादुदयम्	२४
उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं	१८
उदुत्यं जातवेदसं	२६५
उद्वयं तमसस्परि स्वः	२६६
उपेदमुपपर्चनम्	३३
उस्रियः	४६
एतं वो युवानम्	५०
एमां परिस्रुतः कुम्भ	३०
एषा ते कुलपा राजन्	१३
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्	२६१
ऋतावृधः घोरासो	३०१
ऋषभः	४६
कथं वातो नेलयति	३०१
कन्यायां वर्चो	१३
कविमग्निमुपस्तुहि	३०१
काकेन सत्यं जातेनास्मि	३३५

मन्त्र	पृष्ठ
कुहूं देवीं सुकृतम्	६
केवलाघो भवति केवलादी	६८
को वां शयुत्रा	१८
कोशे कोश: समुब्जित:	१३
क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया	१००
गां मा हिंसी:	४३
गावो भगो गाव	३३
गोमती . . . . . घृतवती	३०
गृहान् गच्छ गृहपत्नी	१४
गृह्णामि ते सौभगत्वाय	१४
चक्रवाकेव दम्पती	१५
चित्तिरा उपबर्हणम्	८
चित्तिरा . . . . पतिम्	६
चित्रं देवानामुदगादनीकं	२६५
जगृम्भा ते दक्षिणम्	२६
जनं बिभ्रती बहुधा	१६२,३१३,३४६
जायां जिज्ञासे	१४
तन्तुमातान्	४६
तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत:	३३४
त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्	४६
त्वं विदथमा वदासि	६
त्वं हि न: पिता वसो	२६२, ३१६
त्वामग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे	११७,१६१
त्वां विशो वृणतां राज्याय	११७,१६१
त्वेष:	४६
दृते दृंह मा मित्रस्य	२०७,३१२,३४८
न ता अर्वा रेणुककाटो	३३
न ता नशन्ति न दभाति	३२
न वा उ देवा:	६२
न संस्कृतत्रमुप यन्ति	३३,४३
न स्तेयमद्मि	१६
नाम नाम्ना जोहवीति	२६३
पक्तारं पक्व: पुनराविशाति	१७७,३१४
पतिं देवि राधसे	६
पयस्वान्	४६
पयो धेनूनां रसमोषधीनां	४५, २२२
परि विश्वा भुवनान्यायम्	२६२
परिवृक्तेव पतिविद्यमानट्	२०
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानाम्	४६
पुमान्	४६
पुष्टिं पशूनां परिजग्रभाहं	४४,२२१
पूर्णं नारि प्र भर	३१
प्रजापतिर्मह्यमेता	४०
प्रजावती: सूयवसं	३३
प्र तद्वोचेदमृतं नु विद्वान्	२६२
प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा	४६
प्र सप्तगुमृतधीतिं सुमेधां	२७
प्रियं मा कृणु देवेषु	१६६,३४८
बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये	१६१
बिभ्रती: सोम्यं मधु	४७
बृहस्पते प्रथमं वाचो	३३५
ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम्	८
ब्रह्मापरं युज्यताम्	६
ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्	१६८
भगस्य नावमा रोह	१२, १३
मनसा सवितादधात्	१३
मम पुत्रा: शत्रुहणोऽथो	२४
ममेयमस्तु पोष्या	१४, २०
मया पत्या जरदष्टिर्	१६
मया पत्या प्रजावति	१६
मया गावो गोपतिना सचध्वम्	४७
मयोभूर्वातो	३६

मन्त्र	पृष्ठ
माता रुद्राणां दुहिता वसूनां	४३
मा ते मोच्यनृतवाङ् नृचक्षः	१७७
मा हिंसीर्द्विपादं चतुष्पादम्	४३
मुग्धा देवा उत शुनायजन्तोत	५०
मेऽपचितिर्भसत्	२४
य आत्मदा बलदा	२९२
यज्ञेन वाचः पदवीयं	३३५
यत् त्वा यामि	२७
यथा मां कामिन्यसो	१२, १५
यथासो मम	१५
यथेमां वाचं कल्याणीं	३१६
यदक्षेषु वदा यत्	२३
यद्यज्जाया पचति	१९
यस्मादृचो अपातक्षन्	३३४
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति	१४४
यः पौरुषेयेण क्रविषा	४३
या देवेषु तन्वम्	३९
यास्ते राके सुमतयः	९
याः सरूपा विरूपा	३९
युंजते मन उत युंजते	२९२
यूयं गावो मेदयथा	३३
ये धीवानो रथकाराः	११७, १६१
येन देवा न वियन्ति	३१२
येनेन्द्रो हविषा	२४
योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः	२०८
वनीवानो मम दूतास	२७
वाचस्पते....गोष्ठे नो गा जनय	३९
वायुरनिलममृतमथेदं	२९३
विराडियं सुप्रजा	१४
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु	११७, १६१
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्	२९३

मन्त्र	पृष्ठ
रयिर्न यः पितृवित्तः	६०
रसेन तृप्तो	११३, २०५
राजा वरुणो याति मध्ये	१७७
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीः	४७
शतहस्त समाहर	६६
शासद् वह्निर्दुहितुः	२१
शिवो वो गोष्ठो भवतु	४७
शुद्धाः पूताः योषितो	१३
सत्येनावृतममृतं	३०१
सत्येनोत्तभिता भूमिः	३०१
सत्यं बृहदृतमुग्रं	३०१
सध्रीचीनान्वः	६८
सनद्वाजं विप्रवीरं	२७
समजैषमिमा अहं	२५
समञ्जन्तु विश्वे	१६
समानी प्रपा सह वो	६८
समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः	१००
सम्राज्ञ्येधि	१४
सम्राट् अदित्सन्तं दापयति	८५
सर्वास्त्वा राजन् प्रदिशो	११६, १६१
सर्वाः संगत्य वरीयस्ते	११७, १६१
सहृदयं साम्मनस्यं	२०७, ३१२
सं वो गोष्ठेन सुषदा	४७
सं वः सृजतु....समिन्द्रो	४८
सं सिञ्चामि गवां	२९
साहस्रः	४८
सिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तं	१७७, ३१४
सुब्रह्माणं देववन्तं	२७
सुमंगली प्रतरणी	१४
सुमङ्गलीरियं	२२
सुवाना पुत्रान् महिषी	१३

मन्त्र	पृष्ठ
सुविज्ञानं चिकितुषे	३०१
सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि	४६
सोमो वधूयुरभवत्	१२
स्तुता मया वरदा वेदमाता	३३६
स्वायुधं स्ववसं सुनीथम्	२७
....हसामुदौ महसा	१४

श्लोकादि-अनुक्रमणिका

श्लोक आदि	पृष्ठ
अधार्मिको नरो यो हि	२०६
अनुमन्ता विशसिता निहन्ता	२२३
अभ्यङ्गमंजनम्	२७२
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म	१७७
अविशेषेण पुत्राणाम्	२१
अहिंसयेन्द्रियाऽसंगै:	२०६
अहिंसयैव भूतानां कार्यम्	२०८
अहिंसा परमो धर्मो ह्यहिंसैव परं	२१३
अहिंसा सत्यमस्तेयं	७०
अहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्य	२१०
आयुसत्त्वबलारोग्य-सुखप्रीति	२७३
आवर्त: संशयानाम्	३
आरोकेषु दन्तेषु	१७
इन्द्रियाणां निरोधेन	२०६
उपशकलमेतद्भेदकं गोमयानां	७६
ऊर्वोरुपस्थे जंघयो:	१७
कट्वम्ललवणात्	२७२
कामं क्रोधं च लोभं च	२६६
केशेषु यच्च	१७
क्षमा वीरस्य भूषणम्	२३५
गामेकां दशगुर्दद्यात्	६७
जातिदेशकाल-समयानवच्छिन्ना:	२१०
त्रय उपस्तम्भा इति	२६१
तज्जपस्तदर्थभावनम्	१६३
तत: प्रत्यक् चेतनाधिगमो	१६३
तत्त्वं पूषन्नपावृणु	३००
तत्राहिंसा-सत्याऽस्तेय	६६, २३६
तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा	२१०
तस्मात् त्रिभागं वित्तस्य	६७
दण्डस्य पातनं चैव	२०६
दह्यन्ते ध्मायमानां धातूनाम्	२७१
देवो देवाय गृणते वयोधा	१६२
दृढकारी मृदुर्दान्त: क्रूराचारै	२०६
द्यूतं च जनवादं च	२७२
धारणाद्धर्म:	१३२
धृति: क्षमा दमोऽस्तेयम्	२०८
न भक्षयति यो मांसम्	२२२
नाकृत्वा प्राणिनां हिंसाम्	२२२
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटि	२४७
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य	१३३,२६८
निन्द्यास्वष्टासु चान्यासु	२५३
पानमक्षा: स्त्रियश्चैव	२०६
पैशुन्यं साहसं द्रोह	२०६
प्रच्छर्दनविधारणाभ्याम् वा	२७१
प्रत्यहं प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितम्	२०१
ब्रह्म वा ऋक्	२५४

श्लोक आदि	पृष्ठ
ब्रह्म वै प्रजापतिः	२५४
ब्रह्म वै मन्त्रः	२५४
मरणं बिन्दुपातेन जीवनम्	२६१
मां स भक्षयिताऽमुत्र	२२३
मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः	२०९
यत्तु स्यात् मोहसंयुक्तमव्यक्तम्	२३५
यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः	१३३, २९७
यद् ध्यायति यत्कुरुते धृतिम्	२२२
यमान् सेवेत सततं	७०
यस्तर्केणानुसंधत्ते	३०४
यातयामं गतरसम्	२७२
यानि कानि च घोराणि	१७
यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं	१५५
यावज्जीवेत् सुखं जीवेन्नास्ति	१५५
यो बन्धनवधक्लेशान्	२२२
योऽहिंसकानि भूतानि	२२२
वर्जयेन्मधु मांसं च	२७०,२७२
वर्णो वृणोतेः	७५
वर्षे वर्षेऽश्वमेधेन यो यजेत	२२३
वेदो ब्रह्म	२५४
रसः सोमः	३६
रुक्म एवेन्द्रः	३७
रेतो वै प्रजापतिः	२५४
लेखासन्धिषु	१६
लोभः स्वप्नोऽधृतिः क्रौर्यम्	२३५
शीलेषु यच्च	१७
शौचसन्तोषतपः	६९,२१०,२३६
श्रद्धया देयम्	६७
श्रवणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं	२७०
स पूर्वेषामपि गुरुः	३२८
सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यम्	८३
समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो	११४,२०५
समुत्पत्तिं च मांसस्य	२२२
सोमो वै दधि	३६
सोमः पयः	३६
स्त्रीणां च प्रेक्षणालम्भम्	२७०
स्वरूपदर्शनमप्यस्य भवति	१९४
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते	२०३
हिरण्मयेन पात्रेण	३००
हिंसा बलमसाधूनाम्	२१०

वैदिक साहित्य के प्रेमियों के लिये

श्री आचार्य प्रियव्रत द्वारा लिखित तीन अनूठी पुस्तकें

वेद का राष्ट्रिय गीत

इस पुस्तक पर सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा, दिल्ली की ओर से ३००) का पुरस्कार मिला है ।

लेखक : श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। प्रकाशक : प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार । पृष्ठ-संख्या २५८ । मूल्य सजिल्द पांच रुपये ।

चुनी हुई सम्मतियां

वेद का राष्ट्रिय गीत अथर्ववेद के भूमि-सूक्त के ६३ मन्त्रों पर विशद, गम्भीर और पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या है । भूमि-सूक्त अथर्ववेद के बारहवें काण्ड का प्रथम सूक्त है और उस का प्रतिपाद्य विषय पृथिवी है । इन मन्त्रों के द्वारा एक राष्ट्र-भक्त अपनी मातृभूमि की महिमा और विभूति का गान करता है । राष्ट्र के भौतिक सौन्दर्य, प्रशासनिक व्यवस्था, सांस्कृतिक जीवन की उत्कृष्टता तथा समृद्धि पर मन्त्रमुग्ध हो कर उस के हृदय का संगीत इन मन्त्रों में सहज ही उच्छ्वसित हो उठा है । जैसा कि विद्वान् लेखक ने स्वयं ही कहा है--"इस सूक्त के मन्त्रों में मातृभूमि का सब प्रकार की तुच्छता से दूर कर के मन और आत्मा को धरती से उठा कर आकाश में ले जाने वाला, हृदय को पवित्र और उदात्त भावों से भर देने वाला, राष्ट्र के अभ्युदय के लिये त्याग और तपस्या का पाठ पढ़ाने वाला, जीवन में शक्ति का संचार करने वाला और विश्व-बन्धुत्व की स्फुरणा देने वाला, जो स्वरूप चित्रित किया गया है, वह संसार के साहित्य में अन्यत्र नहीं मिलता, निश्चय ही यह सूक्त आजकल के अर्थ में किसी राष्ट्र का राष्ट्रगीत नहीं है, बल्कि धरती मां की सन्तान मानव का राष्ट्रिय गीत है और "वसुधैव कुटुम्बकम्" की प्रेरणा से उद्भूत है । इसीलिये इस आदर्श राष्ट्र का वह उपासक मानों सारी मानवता का प्रतिनिधित्व करता हुआ गद्गद् हो कर कह उठता है—

यत्ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः ।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः ॥

अर्थात्, हे मातृभूमि ! जो कुछ तेरे मध्य भाग में उत्पन्न होने वाली वस्तुयें हैं, जो कुछ पौष्टिक पदार्थ तेरे शरीर से उत्पन्न होते हैं, उन सब में तू

हमें धारण कर, अर्थात् वह सब कुछ हमें दे। हमें पवित्र बना दे। मां पृथिवी, तू मेरी जननी है और मैं तेरा पुत्र।

प्राचीन ऋषियों की गौरवपूर्ण गुरुकुल-परम्परा को सक्रिय रूप में आगे बढ़ाते हुये आचार्य-प्रवर श्री प्रियव्रत जी ने हिन्दी-साहित्य को जो यह अमूल्य निधि भेंट की है, उस के लिये हिन्दी पाठक उन का चिर-कृतज्ञ रहेगा। भूमि-सूक्त की सरल, गम्भीर तथा पाण्डित्यपूर्ण व्याख्या को पढ़ लेने पर किस का हृदय है जो वैदिक मानव के सरल हृदय की महानता, संवेदन-शीलता और गुरुता पर मन्त्रमुग्ध न हो जाय। भूमि-सूक्त के मन्त्रों में वैदिक संस्कृति और राजनीति का जो चित्र उपस्थित किया गया है उस की गहराइयों में जाने पर हमें निश्चय ही वह सुदृढ़ नींव मिल सकती है, जिस पर खड़े हो कर हम आकाश को छूने की कल्पना कर सकते हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में ९८ पृष्ठ की विशद भूमिका है जो लेखक की गहन विद्वत्ता का परिचायक है। इस में वेदों के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ले कर आज तक के विद्वानों के मतों का विश्लेषण किया गया है, और बतलाया गया है कि उस में ऋषिवर स्वामी दयानन्द की परम्परा ने क्या योग दिया है। इस के साथ ही वेदों के संबन्ध में बहुत सी अन्य ज्ञातव्य बातें भी दी गई हैं। अन्त में भूमि-सूक्त का विस्तृत सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है।

भूमि-सूक्त के मन्त्रों का विशद विवेचन और तर्क-सम्मत व्याख्या १४२ पृष्ठों में प्रस्तुत की गई है। व्याख्या बड़ी ही प्रांजल और सुबोध भाषा में आकर्षक शैली तथा तर्क-सम्मत ढङ्ग पर की गई है। इस व्याख्या के पढ़ लेने पर जहां प्राचीन भारतीय उदात्त भावनाओं पर गौरव हो आता है, वहीं पाठक का मानसिक स्तर भी उच्च हो उठता है।

आचार्य प्रियव्रत जी ने "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" और "वरुण की नौका" द्वारा वैदिक साहित्य के सारभूत तत्त्वों को हिन्दी में प्रस्तुत करने का जो महान् क्रम प्रारम्भ किया है उस को प्रस्तुत ग्रन्थ द्वारा और आगे बढ़ाया गया है। समूची दृष्टि से पुस्तक बड़ी ही उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है। पुस्तक संग्रहणीय है।

—आर्थिक समीक्षा,
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, दिल्ली।

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुप्रसिद्ध विद्वान् आचार्य पं० प्रियव्रत वेदवाचस्पति द्वारा लिखित "वेद का राष्ट्रीय गीत" यह पुस्तक अत्यन्त सुन्दर है। यदि यह पुस्तक अङ्गरेजी सरकार के राज्य में प्रकाशित होती तो सरकार

इसे अवश्य जब्त कर लेती । इस राष्ट्रीय गीत का रहस्य-सहित अर्थ प्रकाशित करने के कारण विद्वान् लेखक प्रशंसा के योग्य हैं ।

प्रथम ९८ पृष्ठों की भूमिका में अनेक उपयुक्त विषयों की चर्चा है । यह भूमिका इतनी अच्छी है कि वह हर एक पाठक को विचारपूर्वक पढ़ने योग्य है । वेद के विषय में प्राचीन व आधुनिक विद्वानों की सम्मतियां यह इस का विभाग विशेष देखने-योग्य है ।

वेद के राष्ट्रीय गीत का अर्थ और स्पष्टीकरण इस पुस्तक के द्वितीय भाग में १४४ पृष्ठों में प्रकाशित किया गया है । प्रत्येक मन्त्र का पृथक्-पृथक् शीर्षक दे कर बड़ा ही उपयुक्त तथा राष्ट्रीय भावना बढ़ाने वाला स्पष्टीकरण देने से विद्वान् लेखक के विषय में बड़ा आदर उत्पन्न होता है । वेद के उपयुक्त विषयों पर ऐसे ही ग्रन्थ विद्वानों के द्वारा प्रकाशित होने चाहियें । गुरुकुल का प्रकाशन-मन्दिर इस क्षेत्र में अच्छा कार्य कर रहा है । इस कार्य से गुरुकुल की शोभा बढ़ रही है । —श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, सम्पादक : वैदिक-धर्म ।

यह पुस्तक भारतीय कालेजों में वेद-विषय के पाठ्य-क्रम में रखने के योग्य है । शिक्षा-विभाग को ऐसे उत्तम ग्रन्थों को प्रोत्साहन देना चाहिये ।

—वेदवाणी, बनारस ।

पुस्तक के पन्ने-पन्ने पर पाण्डित्य का यथार्थ चित्र इस ग्रन्थ में दिखाई देता है । —साधना, मराठी साप्ताहिक, पूना ।

आज की परिस्थिति में जब कि राष्ट्र के नव-निर्माण का कार्य हमारे समक्ष है, इस प्रकार की पुस्तक प्रत्येक शिक्षित नागरिक के हाथ में पहुंचनी चाहिये । —शिक्षण साहित्य (गुजराती मासिक), अहमदाबाद ।

The subject-matter of this detailed and descriptive book is well brought out in the synopsis of the blurb. The reader is at once introduced to the treasures of the ancient Vedas. Shri Vedavachaspati's visualization awakens our attention to the glory that was Ind. —Aryan Path, Bombay.

Shri Priyavrat Vedavachaspati in this Hindi book, has tried to explain the ideas about nationalism and various other political ideas contained in the 'Bhumi-Sukta' of Atharva-Veda. The book is divided in to two parts. Part one deals with various theoris regarding the Vedas. In the second part he has translated and explained each verse of the 'Bhoomi-Sukta' in a very simple and expressive style. He has illustrated every verse with an apt heading, which clears the central idea at a glance. Every statement in the commentary has been illustrated with necessary quotations from Nirukta and Vyakaran.

This book will surely inspire the new generation to plunge in to the detailed study of the Vedic literature.

—Journal of Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay.

भूमि-सूक्त में केवल मातृभूमि एवं उस के प्रति निष्ठा रखने वालों की ही प्रशंसा नहीं है प्रत्युत राज-कर्मचारियों एवं जनता के कर्तव्यों की शिक्षा भी दी गई है तथा राष्ट्र की सर्वाङ्गीण उन्नति के उपयोगी प्रकार बताये गये हैं। जंगलों एवं वनस्पतियों की जड़ी-बूटियों से ले कर खानों एवं समुद्रादि में उपलब्ध होने वाले रत्नादिकों के व्यवसाय की भी शिक्षा दी गई है। राष्ट्र की जनता की शिक्षा-दीक्षा एवं स्वास्थ्य तथा संघटन-शक्ति के प्रति भी चिन्ता प्रकट की गई है और समय-समय यज्ञयागादि के सदनुष्ठानों की प्रेरणा दी गई है। यही नहीं, अनेक मन्त्रों में अत्यन्त भाव-प्रवणता के सन्देश ग्रथित हैं। एक स्थल पर तो यहां तक कहा गया है कि राष्ट्र के निवासियों को अपनी राष्ट्र-भूमि के प्रति माता के समान उच्च भावना रखनी चाहिये तथा स्वयं अपने को उस का एक पुत्र समझना चाहिये। और इस प्रकार अपनी राष्ट्र-भूमि पर उत्पन्न होने वाले सब लोगों को परस्पर भाई-भाई समझना चाहिये और भाइयों की भांति एक दूसरे की सुख-सम्पत्ति को बढ़ाने और दुःख-दारिद्र्य को दूर करने में सदा तत्पर रहना चाहिये।

पुस्तक सर्वत्र उच्च भावनाओं से परिपूर्ण है और उस में राष्ट्र की सर्वाङ्गीण चेतना को परिष्कृत और समुन्नत बनाने की पर्याप्त सामग्री है। विद्वान् लेखक ने अपनी प्रतिभा तथा परिश्रम के इस प्रसून से राष्ट्र-भारती का अपूर्व अलंकरण किया है। उन की इस अनवद्य रचना का घर-घर में आदर होना चाहिये। ——सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।

इस पुस्तक में अथर्ववेद के प्रसिद्ध भूमि-सूक्त (१२. १) की बड़ी विशद, विद्वत्तापूर्ण, सरस और सुन्दर व्याख्या है। पाश्चात्य विद्वानों की यह कल्पना है कि राष्ट्रीयता और स्वदेश-प्रेम की भावना आधुनिक युग में संसार को यूरोप की एक महत्वपूर्ण देन है, किन्तु इस सूक्त के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारत में राष्ट्रीयता की भावना वैदिक युग से चली आ रही है। इस सूक्त में एक आदर्श राष्ट्र की कल्पना कर उस के राष्ट्र-भक्त प्रजाजनों द्वारा न केवल उस की महिमा के गीतों का गान कराया गया है अपितु राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति के आवश्यक गुणों तथा उपायों का भी निर्देश किया गया है।

इस प्रकार यह पुस्तक हमारे राष्ट्र के नवनिर्माण में एक नई स्फूर्ति,

आशा का नवीन संदेश देने वाली तथा राष्ट्रोन्नति में बड़ी उपयोगी और सहायक है। सामुदायिक एवं पंचवर्षीय योजनाओं को क्रियात्मक रूप देने के लिये जो विचारधाराएं तथा मानसिक संबल अपेक्षित हैं, वे इस पुस्तक में विद्यमान हैं। प्रत्येक राष्ट्रीय कार्य-कर्त्ता, देश-सेवक तथा राष्ट्रोन्नति के कार्य में संलग्न व्यक्ति के लिये इस का पारायण लाभप्रद और आवश्यक है। आशा है, हिन्दी-जगत् में इस ग्रन्थ का उपयुक्त समादर होगा।

—दैनिक हिन्दुस्तान, नई देहली।

अथर्ववेद का भूमि-सूक्त राजनीति से सम्बन्ध रखता है। आज हमारा भारत स्वतन्त्र है और राजनीति के सम्बन्ध में अनेकों प्रयोग चल रहे हैं। राजनीति के सम्बन्ध में वेद क्या उपदेश करता है और भारत की वर्तमान परिस्थितियों में ये उपदेश कहां तक लाभकारी सिद्ध हो सकते हैं और इन से राष्ट्र का क्या हित हो सकता है। इस को प्रकाश में लाने के लिये उपर्युक्त भूमि-सूक्त को "वेद का राष्ट्रिय गीत" नाम से एक स्थान पर दे कर लेखक महोदय ने न केवल वेद की ओर राजनीतिज्ञों का ध्यान आकर्षित किया है बल्कि देश का भी समान रूप से हित किया है और वैदिक साहित्य में वृद्धि भी की है। भूमि-सूक्त के मन्त्रों की जो व्याख्या श्री आचार्य जी ने की है वह इतनी सरल और प्रभावोत्पादक है कि आर्यसमाज की वेदी से कथा-रूप में मन्त्रों की व्याख्या को श्रोताओं के सम्मुख रखा जा सकता है।

—सार्वदेशिक, दिल्ली।

सारा ही ग्रन्थ बांचने और विचारने-योग्य है। मूल सूक्त की भव्य कविता वाचक को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। वेद के इस महत्वपूर्ण तथा लोगों में खूब प्रचार पाने-योग्य भाग को इस प्रकार प्रकट कर के, उस के प्रति सब का ध्यान आकृष्ट करने के लिये विद्वान् आचार्य और प्रकाशक संस्था दोनों अभिनन्दन के अधिकारी हैं। इस का सादा संक्षेप प्रकट किया जाये तो निःसन्देह अधिक प्रचार हो सकता है। —बुद्धिप्रकाश, अहमदाबाद।

मैंने "वेद का राष्ट्रिय गीत" पुस्तक को देख लिया है। इस महान् सूक्त को, जो कि संसार की सर्वोत्तम राष्ट्रीय कविताओं में से एक है, जनप्रिय बना कर आपने बहुमूल्य सेवा की है।

—कन्हैयालाल मा० मुंशी, राज्यपाल, उत्तरप्रदेश।

यदि सूक्त लम्बा न होता तो पृथिवी-सूक्त राष्ट्रिय गान होने की पूर्ण क्षमता रखता है। आपने जो सुन्दर संस्करण निकाला है वह बहुत ही उपयोगी है। इस के लिए बधाई है। —सम्पूर्णानन्द, मुख्यमन्त्री, उत्तर-प्रदेश।

आपने मन्त्रों के अर्थों का जो सप्रमाण मार्मिक विवेचन किया है उसे देख कर बहुत प्रसन्नता हुई। आप की सरल शैली से विषय सर्वत्र रोचक बन गया है। —वासुदेवशरण, काशी विश्वविद्यालय।

मैं हृदय से ग्रन्थकर्ता का इस साहित्यिक देन के लिए अभिनन्दन करता हूं। —मङ्गलदेव शास्त्री, काशी।

· · निश्चयेन, सब नहीं तो कुछ चुने हुए मन्त्र भारत की सब शिक्षा-संस्थाओं में, छात्रों और छात्राओं को कण्ठस्थ करा देने चाहिएं।

—डा. भगवानदास, बनारस।

आपका यह 'वेद का राष्ट्रिय गीत' पुस्तक बहुत सुन्दर तथा मननीय है। आपने अपनी इस पुस्तक में राष्ट्रिय गीत की व्याख्या सरल, रोचक, शिक्षाप्रद तथा ईश्वर-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम के सुन्दर रूप में दी हुई है। पुस्तक में दिए हुए तत्त्वों के अनुसार चल कर हम अपने राष्ट्र को भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति की बहुत ऊंची चोटी पर ले जा सकेंगे।

—ढुंढिराज शास्त्री बापट, वाजपेययाजी, पूना।

'वेद का राष्ट्रिय गीत' को पढ़ जाने से वैदिक राष्ट्र की कल्पना, राष्ट्र-वासियों का राष्ट्रहित के लिए कर्त्तव्य, राष्ट्र की श्रीसमृद्धि के लिए उपाय आदि का प्रबोध हो जाता है। ग्रन्थ चिरकाल की चिन्तना के पश्चात् बड़े परिश्रम से लिखा गया है।

—आचार्य नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, एम. एल. ए., महाविद्यालय, ज्वालापुर।

· वर्तमान जगत् की राजनीतिक समस्याओं में यह पुस्तक सत्य नीति का प्रदर्शन करा सकती है। —प्रो. विश्वनाथ वेदोपाध्याय।

वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत्। श्रीहर्षः।

इस लिए मैं अति संक्षेप से अपनी सम्मति व्यक्त करता हूं कि श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति जी ने जिस बुद्धि-वैभव से इस पृथिवी-सूक्त को सजाया है, इस का सदुपयोग तभी हो सकता है जब कि हमारे शिक्षा-अधिकारी इसे उन्नत कक्षाओं के पाठ्यरूप में रख दें।

मैं लेखक के वेद-महत्त्व के प्रतिपादन में भूमिका-विन्यास से भी बहुत प्रभावित हुआ हूं। उन्होंने सभी उपादेय ग्रन्थों में उल्लिखित वेद-महत्त्व-सम्बन्धी विचारों का एकत्र संग्रह कर दिया है। जिस से सृष्टि के आदि से ले कर सभी मनीषियों की वेद-महत्त्व-सम्बन्धी धारणायें अनायास ज्ञात हो जाती हैं।

प्रतिपाद्य विषय 'भूमि-सूक्त' की व्याख्या तो अपने ऐसे यथार्थ रूप से तथा रोचक भाव और भाषा में की है कि पढ़ने वालों का हृदय, भारतीय

स्वातन्त्र्य के संरक्षण और परिपोषण के लिए यह ग्रन्थ सारस्वताकाश में सूर्य-सदृश है, यह कहने को विवश हो जाता है।

मैं सभी शिक्षा-संस्थाओं के संचालकों से अनुरोध करूंगा कि आज स्वतन्त्र भारत की रक्षा तथा 'महात्मा गांधी' के प्रिय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इस ग्रन्थ-रत्न का अध्ययनाध्यापन पाठ्यरूप में प्रारम्भ कर दें। ईश्वर से प्रार्थना है कि लेखक को दीर्घायु करें कि अन्यान्य वेद-सूक्तों की भी ऐसी व्याख्या जन-कल्याणार्थ उपस्थित करते रहें। —श्री गोपाल शास्त्री, दर्शन केसरी,
अध्यक्ष: काशी-पंडितसभाया:।

निस्सन्देह यह ग्रन्थ गहन विद्वत्ता, पण्डित्य तथा स्वदेशानुराग का फल है। चि. द्वा. देशमुख, अर्थमन्त्री, भारत सरकार।

वेद का राष्ट्रिय गीत पढ़ा। आपकी व्याख्या ने गीत को संगीत बना दिया है। यह पुस्तक न केवल आधुनिक भारतीयों अपितु समस्त नागरिकों के काम की चीज़ है। इस से वैदिक संस्कृति के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ेगी और जनता का कल्याण भी होगा। इस का एशिया की अन्य भाषाओं और विशेष कर रूसी भाषा में, अनुवाद होना चाहिए। —गङ्गाप्रसाद उपाध्याय, एम. ए.।

I recommend your book to all scholars and students of Indian History and Culture It gives us a glimpse in to the origin of Hindu positive sciences so badly neglected in our studies! Free India should know about these Hindu sciences and would, I hope, subsidize such useful publications of the Gurukula University which we all admire as a major National Organization. —Kalidas Nag, Greater India Society.

Your introduction deals critically with a number of problems allied to the study of Vedas, and lays down certain broad principles for the interpretation of the Vedic Mantras, which are in my opinion, sound and calculated to reveal to the readers the deep and profound significance of the Mantras

I read with great interest considerable portion of your illuminating commentary of the Mantras of the Bhumi-Sukta of the Atharvan Veda which you have collectively described as Rashtra-Gita. This hymn of the Atharva-Veda shall rank as the noblest expression of the Great Truths that underlie the progress of human society and its ultimate evolution in to one world family concept (**वसुधैव कुटुम्बकम्**). Books like these should be in the hands of every youth and young girl of Bharat. The proper understanding of the Vedic Mantras by them will solve the problems relating to the future of India and its place in the civilised world,

They will know what is the conception of the ideal citizens given in the Vedas and of true relation of Nationalism with universalism. In that understanding lies the stability of peace, the essential condition for universal and all round progress of humanity.

You have done a great service to the cause of popularising of the study of the Vedas by bringing out this work which bears on it the impression of your scholarship and deep thinking. —M. S. Aney.

…the author shows a very good detailed knowledge of Vedic literature; and he has sought to establish his thesis with full erudition.

—Suniti Kumar Chatterji, Culcatta University.

वेदोद्यान के चुने हुए फूल

इस पुस्तक पर उत्तर प्रदेश राज्य की ओर से ४००) तथा आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब, की ओर से २५०) पुरस्कार मिला है।

लेखक—आचार्य श्री प्रियव्रत वेदवाचस्पति, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार। मूल्य सजिल्द ५) । प्रकाशक—प्रकाशन मन्दिर, गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय। पृष्ठ-संख्या २५३।

चुनी हुई सम्मतियां

गुरुकुल-स्वाध्याय-मंजरी का यह २३ वां पुष्प है। जैसा कि विद्वान् लेखक ने पुस्तक के प्रारम्भ में ही श्रद्धानन्द-स्मारक-निधि के सदस्यों की सेवा में निवेदन किया है: 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' में भिन्न-भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखने वाले कुछ महत्त्वपूर्ण वेद-मन्त्रों और सूक्तों का संग्रह किया गया है। इन में से एक-एक मन्त्र निराला उपदेश देने वाला है। एक-एक मन्त्र और उसके एक-एक शब्द में हमारे जीवन को महान् बना देने की शक्ति है।

इस के बाद आचार्य प्रियव्रत ने जो २२ पृष्ठों की विचारोत्तेजक भूमिका लिखी है उस में यह स्पष्ट रूप से सिद्ध किया है कि स्वतन्त्र भारत के विकास की दो दिशायें हो सकती हैं और उसे पश्चात्य जगत् की आधुनिक भौतिकतावादी, मशीन-प्रधान, सभ्यता का अनुकरण न कर अपनी अध्यात्मवादी भारतीय संस्कृति के आधार पर ही अपने को विकसित करना चाहिये। और अपने इस विचार को उन्होंने वैदिक संस्कृति की महानता को सिद्ध करते हुए बल प्रदान किया है। मन्त्रों के स्वाध्याय की रीति भी उन्होंने दी है। फिर

वेद-खण्ड, ईश्वर-खण्ड, सृष्टि-खण्ड, उपासना-खण्ड, स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति-खण्ड, ब्रह्मचर्य-खण्ड, गृहस्थ-खण्ड, राष्ट्रनिर्माण-खण्ड, विविध-खण्ड, इत्यादि, नौ खण्डों में विभक्त है और प्रत्येक खण्ड में विद्वान् लेखक ने वेदों के मूल उद्धरण को देकर उन का अर्थ दिया है और उन के तात्पर्य को बड़े भावपूर्ण ढंग से समझाया है। उदाहरणार्थ, राष्ट्र-निर्माण-खण्ड में उन्होंने मातृभूमि का मातृभूमित्व, राष्ट्र के निर्माता ऋषि, राष्ट्र की गाड़ी में कैसे बैल जोड़ेंगे; एक हृदय, एक मन और एक भोजन; ऐश्वर्य और अभ्युदय का मूलमन्त्र, राज्य व्यापार-व्यवसाय को प्रोत्साहन दे, हमारे समाज में कोई किसी का शत्रु न रहे, अभ्युदय की राष्ट्रिय प्रार्थना, इत्यादि, विचारों को वैदिक उद्धरणों के आधार पर सुन्दर रूप से समझाया है।

स्वास्थ्य और जीवन-शक्ति-खण्ड भी स्वास्थ्य को ठीक रखने के सुन्दरतम उद्धरणों से भरा पड़ा है। इस खण्ड में एक मन्त्र निम्न प्रकार है—

स्रक्त्योऽसि प्रतिसरोऽसि प्रत्यभिचरणोऽसि।
आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ॥ अथर्व. २. ११. २

अर्थात् मनुष्य में नई रचनायें करने की शक्ति है, आगे बढ़ने का बल है, आक्रमण को रोकने की शक्ति है। उसे अपने आप को किसी बात में हीन नहीं समझना चाहिये।

मानव को निरन्तर आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले यह 'वेदोद्यान के चुने हुए फूल' आज आगे को अग्रसर होने के लिये प्रयत्नशील भारत के वास्ते कितने प्रेरणावान् हैं, इसे कहने की आवश्यकता नहीं।

संक्षेप में, सम्पूर्ण पुस्तक ऐसे चुने हुए फूलों से ओत-प्रोत है और कहा जा सकता है कि इस पुस्तक का शीर्षक "वेदोद्यान के चुने हुए फूल" से अधिक सुन्दर शायद नहीं हो सकता था। पुस्तक में आचार्य प्रियव्रत के गम्भीर अध्ययन और वेदों के उन के गहरे पांडित्य की स्पष्ट झलक मिलती है और निश्चय ही ऐसी रचना प्रकाशित कर उन्होंने नव-निर्माण में रत भारत की गहरी सेवा की है। वास्तव में यह एक ऐसी रचना है जो अधिक से अधिक पढ़ी जानी चाहिये और हम को यह देख कर थोड़ा सा दुःख ही हुआ कि इस सुन्दर पुस्तक का प्रथम आवर्तन केवल १००० ही हुआ। स्पष्ट है कि अभी हिन्दी के पाठक पुस्तकों को खरीद कर पढ़ने से गुरेज करते हैं, और जितनी जल्दी यह प्रवृत्ति समाप्त हो और हिन्दी के प्रकाशनों को खरीद कर लोग पढ़ने लगें, उतना ही राष्ट्र-भाषा हिन्दी के हित में अच्छा है। एक बात और। बहुधा यह कहा जाता है कि हिन्दी में ऐसी मूल रचनायें अब लिखी

जानी चाहियें ताकि जिज्ञासु लोग अपने ज्ञान को बढ़ाने के लिये मूल हिन्दी रचनाओं को पढ़ने पर बाध्य हों और उस के लिये हिन्दी सीखें। कहा जा सकता है कि आचार्य प्रियव्रत जी की यह पुस्तक ऐसी उच्च कोटि की है। अतः हम पुनः विद्वान् लेखक को उन के घोर परिश्रम के लिये हृदय से बधाई देना चाहेंगे।

—आर्थिक समीक्षा,
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, दिल्ली।

मन्त्रों के अर्थ एक उच्च नैतिक स्तर से किये गये हैं। इन का पाठ और मनन नैतिक भावनाओं को जागृत करने में सहायक होगा।

—साहित्य सन्देश, आगरा।

इस ग्रन्थ की बड़ी विस्तृत भूमिका विशेष मनन के साथ पढ़ने योग्य है। इस भूमिका में स्वतन्त्र भारत और उस के विकास के सम्बन्ध में लिख कर इस विकास के लिये वेद ही सहायक हो सकता है ऐसा बताया है। क्या भारत पाश्चात्यों का अनुकरण करेगा इस पर लिखे विचार बड़े मननीय हैं। यूरोप की भौतिक संस्कृति से जो भय होता है वह बता कर भारत की आध्यात्मिक संस्कृति कैसी उत्तम है यह सप्रमाण सिद्ध किया है।

भारतीय संस्कृति का स्रोत वेद है, वेद की प्रतिष्ठा भारतीय परम्परा में है, यह बता कर मानवमात्र का धर्म वेद ही है यह उत्तम रीति से सिद्ध किया है।

आगे वेद-उद्यान के चुने हुए फूल हैं। इन की अनेक मालायें बना कर पाठकों के सामने रखी हैं। नौ मालाओं में यह सब फूल बंटे हैं। मन्त्र-मन्त्र का पदार्थ और विवरण इस तरह सुबोध पद्धति से मन्त्रों का भाव समझाने वाली यह अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। जो पाठक वेद के मन्त्रों का मर्म समझने की इच्छा करते हैं, वे इस पुस्तक का अवश्य संग्रह करें। हर एक वेद-प्रेमी श्री आचार्य प्रियव्रत जी की इस पुस्तक का निर्माण करने के लिये हार्दिक प्रशंसा ही करेगा।

—वैदिकधर्म, सूरत।

लेखक ने अपनी इस पुस्तक में बहुत से संगीतमय और महत्त्वपूर्ण वेदमन्त्रों का संग्रह किया है जिन की भाषा जितनी सरल और स्पष्ट है उन का अर्थ भी उतना ही सरल और स्पष्ट है।…"वेदोद्यान के चुने हुए फूल" पुस्तक में वेदमन्त्रों का जो संग्रह किया गया है उन से भारतीय विचार और भावनाओं की महानता का एक स्पष्ट आभास प्राप्त होता है।

—अजन्ता, हैदराबाद।

संकलित सूक्तों और मन्त्रों के संकलन और व्याख्यान में मनीषी लेखक की परिचयचारुता और वैदिक साहित्य पर उन की विद्वत्ता का परिचय मिलता

है। जीवन-निर्माण, राष्ट्र-निर्माण और परलोक-साधन सभी उपयोगी विषयों की कृतकार्यता इस संकलन में है। निःसंदेह इन चुने हुए वेद-मन्त्रों का अनुशीलन करने, तदनुसार जीवन को ढालने की कोशिश करने पर जिज्ञासु पाठक वैदिक-साहित्य और जीवन का अभिप्राय समझ कर तत्त्वदर्शन कर सकेगा ऐसा हमारा विश्वास है। —सम्मेलन पत्रिका, प्रयाग।

संदेह नहीं कि इन मन्त्रों और सूक्तों के दिये हुए अर्थों को समझते हुए यदि हम अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करें तो यह संसार हमारे लिये स्वर्गोपम हो सकता है। —सरस्वती, प्रयाग।

ग्रन्थ वेद-स्वाध्यायशील व्यक्तियों के लिये तो ऐसा सुन्दर उपहार है ही जो उन्हें आत्मिक प्रेरणा प्रदान करेगा तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उचित दिशा-निर्देशन करेगा, साथ ही यह भारतीय संस्कृति के प्रत्येक उपासक व अध्येता के लिये वेदों के वास्तविक, सात्त्विक और निर्मल स्वरूप की झांकी भी प्रदान करेगा। मन्त्रों की व्याख्या निःसन्देह अत्यन्त मनोरम, प्रौढ़, प्रांजल एवं मननीय है। वेदों के रमणीय उद्यान के ये चुने हुए पुष्प निश्चय ही जीवन को सुवासित करेंगे। —सविता, अजमेर।

संग्रह अच्छा है और मन्त्रों का भाव भी प्रायः बहुत अच्छे ढंग से समझाया गया है। —सम्पूर्णानन्द, मुख्यमन्त्री, उत्तरप्रदेश।

"वेदोद्यान के चुने हुए फूल" देख कर जी बाग-बाग हो गया। पुस्तक बहुत सुन्दर है। —गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रयाग।

मन्त्रों के चुनाव में मानवीय कल्याण और वैदिक अध्यात्म-चेतना का बराबर ध्यान रखा गया है। संग्रह बहुत उपादेय बन पड़ा है।

—वासुदेवशरण अग्रवाल, बनारस।

ईश्वर-भक्ति और वैदिक उदात्त भावनाओं से परिप्लुत इस महत्त्व के ग्रन्थ को प्रस्तुत करने के लिये हम आचार्य जी को हृदय से बधाई देते हैं।

—मंगलदेव शास्त्री, वैदिक स्वाध्याय मन्दिर, बनारस कैण्ट।

दैनिक स्वाध्याय की दृष्टि से आप के लिखे ग्रन्थ का बहुत ऊंचा स्थान है। भूमिका ने ग्रन्थ की उपयोगिता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। प्रत्येक आर्य घराने में ऐसे ग्रन्थों का रहना अत्यन्त आवश्यक है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति, सदस्य भारतीय विधान-परिषद्।

भूमिका सारगर्भित है। पुस्तक की आत्मा भूमिका में प्रतिबिम्बित हुई है। लेखशैली ओजभरी, सरल तथा हृदयग्राहिणी है।

—विश्वनाथ विद्यालङ्कार, देहरादून।

वरुण की नौका

कर्मफल, पुण्य, पाप, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य की इस पुस्तक में मीमांसा है। राजा वरुण-प्रभु की आंखें सब जगह पर हैं। कर्मफल-विज्ञान के जिज्ञासुओं के लिये यह पुस्तक एक वरदान है। लेखक ने अत्यन्त सरल भाषा में सच्चे सुख का सच्चा उपाय इस में बताया है। प्रभु की कृपा किस पर होती है और कैसे कर्म कर के हम प्रभु के प्यारे हो सकते हैं इत्यादि विषय पुस्तक में दार्शनिक गहराइयों के साथ सरल रूप में वर्णित हैं। मूल्य प्रथम भाग ३), द्वितीय भाग ३)।

चुनी हुई सम्मतियां

यह पुस्तक अत्यन्त खोजपूर्ण है, कई नई महत्त्वपूर्ण बातें इस में हैं। अतः यह पुस्तक वेदान्वेषण के कार्य की अपने क्षेत्र में पूर्ति करने वाली है। गुरुकुल विश्वविद्यालय ने इसे प्रकाशित कर के बड़ा अच्छा कार्य किया है। मुझे पूर्ण आशा है कि इसी तरह के खोजपूर्ण वैदिक ग्रन्थ गुरुकुल से प्रकाशित होते रहेंगे और वैदिक ज्ञान के गम्भीर सन्देश जनता तक पहुंचाते रहेंगे।

—श्रीपाद.दा. सातवलेकर,

सञ्चालक, स्वाध्याय-मण्डल, पारडी, सूरत।

वरुण-सूक्तों पर एक नये दृष्टिकोण से लेखक ने विचार किया है। लेखक का दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। वरुण के सम्बन्ध में अब तक के उलझे हुए विचारों से ऊपर उठ कर आध्यात्मिक दृष्टि से वरुण देवता के स्वरूप पर विचार करने के लिये लेखक बधाई के पात्र हैं। —वासुदेवशरण अग्रवाल,

हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस।

पुस्तक बहुत सुन्दर है। वैदिक साहित्य के जिज्ञासुओं को इस से लाभ होगा। इस सुन्दर पुस्तक के प्रकाशन के लिये आपको बधाई देता हूं।

—क्षितिमोहन सेन,

आचार्य, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन।

"वरुण की नौका" को मैंने बहुत प्रेम से आदि से अन्त तक पढ़ा है। एक तो वैदिक साहित्य से प्रेम है, दूसरे वैदिक मन्त्रों में जो भक्ति का ईश्वर के प्रति अपूर्व प्रदर्शन-प्रकार है उस पर चित्त मुग्ध है, इस कारण मैंने इस पुस्तक को बहुत उत्सुकता से देखा है और नित्य स्वाध्याय में भी इस के स्थल पढ़ा करता हूं। मित्रों को भी सुनाता हूं। वेदवाचस्पति श्री पं० प्रियव्रत जी की विद्वान् लेखनी से वेदमन्त्र का कोई रहस्य छूट नहीं पाया है। यह अपने

ढङ्ग का एक अनुकरणीय मनन है। वेद के प्रेमी ईश्वर-भक्तों को इस "वरुण-नौका" की भक्तिरस-धारा का अवगाहन करना चाहिये।

—जयदेव विद्यालङ्कार, चतुर्वेद-भाष्यकार, अजमेर।

गुरुकुल कांगड़ी के आचार्य श्री पं० प्रियव्रत जी वेदवाचस्पति की लिखी "वरुण की नौका" नामक पुस्तक को देख कर मुझे आनन्द हुआ। इस पुस्तक में ऋग्वेद के छः वरुण सूक्तों की उत्तम व्याख्या है। श्री पं० प्रियव्रत जी वेदों के विद्वान् हैं, गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक हैं, वे बहुत वर्षों से वरुण के सूक्तों का विशेषतया मनन करते रहे हैं। मुझे आशा है कि उन की लिखी यह पुस्तक स्वाध्यायशील आर्य-पुरुषों के लिये बहुत उपयोगी सिद्ध होगी, विशेषतः उन में प्रभु-भक्ति उत्पन्न करने में बहुत सहायक होगी।

—अभय विद्यालङ्कार,
भू० पू० आचार्य, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

I have gone through the book and I am glad to say that you have brought out the significance of "Varun" very well. —A. B. Purani,
श्री अरविन्द आश्रम, पांडीचेरी।

आपका यह व्याख्यान सुसंगत तथा भावपूर्ण है। ऐसी सुन्दर आध्यात्मिक व्याख्या के लिये मैं आप को बधाई देता हूं। प्रत्येक भगवद्भक्त के पास प्रातःकाल के स्वाध्याय के लिये यह पुस्तक होनी चाहिये।

—आत्मानन्द सरस्वती,
आचार्य, दयानन्द उपदेशक विद्यालय, यमुनानगर, अम्बाला।

वैदिक संहिताओं में वरुण देवता के सूक्त उत्कृष्टता, उच्च भक्ति-भावना, नैतिकता तथा विचारगाम्भीर्य के लिये प्रसिद्ध हैं। ग्रन्थकार ने उन्हीं सूक्तों को एकत्र कर के उन पर जो सुन्दर व्याख्या की है वह विद्वत्ता से पूर्ण होने के साथ-साथ साधारण जनता के लिये भी सुगम और रोचक सिद्ध होगी। जनता में वैदिक स्वाध्याय के द्वारा वैदिक उदात्त भावनाओं के प्रचार में पुस्तक अवश्य सहायक होगी। —मंगलदेव शास्त्री एम. ए., डी. फिल्.,
प्रिंसिपल, गर्वनमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस।

"वरुण की नौका" नामक पुस्तक मैंने ध्यानपूर्वक पढ़ी है। वेद के कतिपय वरुण-सूक्तों की व्याख्या इस पुस्तक में बहुत सुन्दर रूप में हुई है। दृष्टि यह रखी गई है कि मन्त्रों में गम्भीरतम भाव भी सर्वसाधारण को समझ में आ सकें। मन्त्रों के प्रति पद के भावों को भी खोल कर दर्शा दिया गया है। मन्त्रों की परस्पर संगति के दर्शाने में भी लेखक बहुत सफल हुए हैं।

वेद-भक्तों को इस पुस्तक का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये। यह पुस्तक आर्य-साहित्य में ऊंचा स्थान रखती है। —विश्वनाथ विद्यालङ्कार,
भू० पू० वेदोपाध्याय, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय।

"वरुण की नौका" में बैठ कर मैंने ऋग्-उदधि के कई स्थानों का विहार किया और मुझे बड़ा आनन्द मिला। वेद-भक्तों के लिये "वरुण की नौका" बड़े काम की वस्तु है। स्वाध्याय के लिये ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता है जिस से साधारण से साधारण व्यक्ति सरल भाषार्थ द्वारा वेदों के तत्त्व को विना विशेष प्रयास के ही जान सके। इस में कई प्रकरण तो इतने भावपूर्ण हैं कि भक्तिप्रवण व्यक्ति तल्लीन हो कर एक वार तो संसार की चिन्ताओं को भूल जाता है, चाहे स्वल्प समय के लिये ही क्यों न हो। प्रत्येक वेदाध्यायी स्वाध्यायी को दृढ़ाध्यवसायी रह कर प्रतिदिन नियमपूर्वक ऐसे सूक्तों का स्वाध्याय करते रहना चाहिये। वेद-विषय में इस परिश्रम के निमित्त श्री प्रियव्रत जी के लिये अनेक साधुवाद। —नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ, महाविद्यालय, ज्वालापुर।

इस उत्तम पुस्तक में ऋग्वेद तथा अथर्ववेद के वरुण-सूक्तों की सरल, रोचक, शिक्षाप्रद तथा भक्ति-भाव-वर्धक व्याख्या की गई है। इस को पढ़ कर शुष्क हृदय भी ईश्वर-प्रेम की उच्च भावना के मधुर रस का आस्वादन कर के द्रवीभूत हो सकते हैं। वेद-मन्त्र कितनी रसीली चीज़ हैं। इस बात का प्रतिपादन इस पुस्तक से होता है। संसार-सागर को तैर कर परम-धाम तक पहुंचने के उत्सुक जीवों के लिये "वरुण की नौका" एक उत्तम साधन है। आचार्य प्रियव्रत जी की लेखन-शैली बड़ी चित्ताकर्षक है। ईश्वर-प्रेमियों के के लिये श्री आचार्य जी ने जो सामग्री सम्पादित की है उस के लिये वे हम सब के धन्यवाद के पात्र हैं। —गङ्गाप्रसाद उपाध्याय।

विद्वान् लेखक ने वरुण-सम्बन्धी अनेक सूक्तों का समन्वय करते हुए युक्ति-संगत भाष्य किया है। "वरुण की नौका" पुस्तक आर्य-साहित्य में अभि-रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिये विशेष काम की है।

—सत्यप्रकाश डी. एस-सी., रसायन विभाग, विश्वविद्यालय, प्रयाग।

पं० प्रियव्रत जी आर्यसमाज के उन थोड़े से विद्वानों में से हैं, जिन्होंने वेदों का बहुत गहन अध्ययन किया है। "वरुण की नौका" में व्याख्या विस्तृत और विशद है। यह स्वाध्याय के लिये अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है।

—इन्द्र विद्यावाचस्पति।

प्रत्येक ईश्वर-भक्त स्वाध्याय प्रेमी को इस की एक प्रति मंगवा कर और उस का प्रतिदिन स्वाध्याय कर के आध्यात्मिक लाभ उठाना चाहिये। भाषा

इतनी सरल और शैली इतनी उत्तम है कि उस का चित्त पर विशेष प्रभाव हुए विना नहीं रह सकता। —सार्वदेशिक, दिल्ली।

आचार्य प्रियव्रत जी ने इस पुस्तक को लिख कर स्वाध्यायशील वैदिक साहित्य-प्रेमियों का वस्तुतः विशेष हित-साधन किया है। हम आशा करते हैं कि वैदिक-साहित्य के प्रेमीजन इसे अपनायेंगे। —आर्यमित्र, लखनऊ।

पुस्तक इतनी सरल और सरस भाषा में लिखी गई है कि पढ़ने वाला चमत्कारित होने के साथ-साथ भक्ति-रस में परिप्लावित हो आनन्द-विभोर हो जाता है। आचार्य जी वैदिक सागर के जहां सफल गोताखोर हैं, वहां वैदिकी-गङ्गा के प्रबल प्रवाह में से चुन-चुन कर काम की चीज़ निकालने वाले सफल तैराक भी हैं। इतना ही नहीं वे समय पड़ने पर अपने परिश्रम के फलों को नौका पर लाद कर तीर पर खड़ी श्रद्धालु जनता को धर्मधन के रूप में खड़े लुटा देने वाले भी हैं। —आर्यमार्तण्ड, अजमेर।